[**परिचय :** भारत मे ९ प्रमुख जीवित भाषाएँ हैं जिनका अपना
हानी साहित्य है। इनके अतिरिक्त ४ और जबाने भी हैं—आसामी,
डिया, सिंधी, गुरुमुखी। हमारी योजना यह है कि पहली ९ भाषाओं
प्रत्येक से १० या अधिक सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कहानियाँ एक-एक पुस्तक
सगृहीत की जायँ और इन सग्रहो की यह माला 'गल्प-ससार-माला' के
ाम से प्रसिद्ध हो। पहले इन ९ भाषाओं का सग्रह तैयार होगा। १०वे
ाग म अतिम चार ज़बानो की मिली हुई कहानियाँ पूरी की जायँगी।
ारम्भ मे भारत से, इस प्रकार १० भाग हुए। इसके उपरान्त ससार
ी और भी भाषाओ से कहानियाँ इन पुस्तिकाओ मे सगृहीत की जायँगी,
से अग्रेज़ी, फ्रच, रूसी, आदि, और यह माला ३-४ वर्षो मे सपूर्ण
ोगी। किन्तु प्रत्येक भाग अपने आप मे पूर्ण होगा और इसलिए यह
म्बी अवधि भयकर न होनी चाहिये। प्रत्येक भाग मे २००-२५० पृष्ठों
क रहेंगे, कागज सुन्दर, सफेद ग्लेज रहेगा मूल्य बेहद सस्ता, यानी
आठ आने प्रति भाग और स्थायी ग्राहको को **छः आने** मे मिलेगा
इस माला की सबसे बडी विशेषता इसकी प्रामाणिकता है जिसके लिए
ाकाशको ने सभी साहित्यकारो तथा सस्थाओ से मदद ली है और पृथक
रिश्रम किया है जिसके लिए प्रकाशको का नाम ही पर्याप्त है। इस
ाला का स्थायी ग्राहक बनना आपका कर्तव्य होना चाहिये क्योकि इतनी
ुरुचिपूर्ण और प्रामाणिक किताबे इस सस्ते मूल्य हिन्दी मे प्राप्य नहीं हैं,
था इस योजना की सफलता इसी मे है कि इसके कम से कम दो हज़ार
थायी ग्राहक हमे मिल जायँ।]

गल्प-संसार-माला

: संपादक :

श्रीपतराय

भाग— : तमिल

: लेखक-गण :

स्वर्गीय माधवैय्या | बी० एस० रामय्या
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य | जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति'
एस० जी० श्रीनिवासाचार्य | वृद्धाचलम 'नवललोलुप'
पिचमूर्ति 'भिक्षु' | कुमार स्वामी
कृष्णमूर्ति 'कल्की' | चिदम्बर सुब्रह्मण्यन्
कु० प० राजगोपालन्

इस अंक के संपादक और अनुवादक :

का० श्री० श्रीनिवासाचार्य

बनारस,

सरस्वती प्रेस ।

प्रथम सस्करण, १९३८ ।

मूल्य आठ आने ।

मुद्रक

श्रीपतराय

सरस्वती-प्रे

बनारस

[**परिचय :** भारत में ९ प्रमुख जीवित भाषाएँ हैं जिनका अपना
हानी साहित्य है। इनके अतिरिक्त ४ और ज़बानें भी हैं—आसामी,
ड़िया, सिंधी, गुरुमुखी। हमारी योजना यह है कि पहली ९ भाषाओं
प्रत्येक से १० या अधिक सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कहानियाँ एक-एक पुस्तक
संगृहीत की जायें और इन संग्रहों की यह माला 'गल्प-संसार-माला' के
ाम से प्रसिद्ध हो। पहले इन ९ भाषाओं का संग्रह तैयार होगा। १०वें
ाग में अंतिम चार ज़बानों की मिली हुई कहानियाँ पूरी की जायेंगी।
ारम्भ में भारत से, इस प्रकार १० भाग हुए। इसके उपरान्त संसार
ी और भी भाषाओं से कहानियाँ इन पुस्तिकाओं में संगृहीत की जायेंगी,
से अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, आदि, और यह माला ३-४ वर्षों में संपूर्ण
ोगी। किन्तु प्रत्येक भाग अपने आप में पूर्ण होगा और इसलिए यह
म्बी अवधि भयंकर न होनी चाहिये। प्रत्येक भाग में २००-२५० पृष्ठों
ाक रहेंगे, कागज सुन्दर, सफेद ग्लेज रहेगा, मूल्य बेहद सस्ता, यानी
आठ आने प्रति भाग और स्थायी ग्राहकों को **छः आने** में मिलेगा
इस माला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रामाणिकता है जिसके लिए
प्रकाशकों ने सभी साहित्यकारों तथा संस्थाओं से मदद ली है और पृथक
परिश्रम किया है · जिसके लिए प्रकाशकों का नाम ही पर्य्याप्त है। इस
माला का स्थायी ग्राहक बनना आपका कर्तव्य होना चाहिये क्योंकि इतनी
सुरुचिपूर्ण और प्रामाणिक किताबें इस सस्ते मूल्य हिन्दी में प्राप्य नहीं हैं,
तथा इस योजना की सफलता इसी में है कि इसके कम से कम दो हज़ार
स्थायी ग्राहक हमें मिल जायें।]

जिनकी कहानियाँ यहाँ संगृहीत हैं उन्हीं
अमर कथाकारों
को

कृतज्ञता-प्रकाशन

हम उन सभी लेखकों को,

जिनकी कहानियाँ इसमें संगृहीत हैं,

और उन सभी प्रकाशकों को,

जिन्होंने स्वर्गीय लेखकों की कहानियाँ

प्रकाशित करने की कृपापूर्वक अनुमति दी है,

अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

—प्रधान सम्पादक

सूची

कन्या-पितृत्व

स्व० माधवैय्या

[स्वर्गीय श्रीमाधवैय्या का जन्म १८७२ ईस्वी में हुआ था। आप आधुनिक तमिल-साहित्य के पथ-प्रदर्शकों में से एक थे। अपने समय के आप एक सुदृढ़ समाज-सुधारक और शिक्षा-विशारद थे। अपने जीवन काल में स्व० माधवैय्या एक 'पंचामृतम्' नाम का पत्र भी चलाते थे। आपने कुछ बहुत सफल उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें 'पद्मावती चरित्रम्' बहुत प्रसिद्ध है। आपने अपनी कहानियाँ 'कुशिक' उपनाम से लिखी हैं। ये ही कहानियाँ तमिल-गल्प-साहित्य की प्रारंभिक कहानियाँ हैं। ये सभी कहानियाँ समाज-सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं। यद्यपि आपकी कला में प्रचार-वृत्ति अधिक है; पर कला की भी दृष्टि से आपकी कहानियाँ बहुत ऊँची उठती हैं। तमिल-प्रान्त के सामाजिक जीवन का बहुत ही सजीव और सच्चा चित्रण आपकी कहानियों में मिलता है। सन् १९२९ में आपकी मृत्यु से आधुनिक तमिल-साहित्य का एक बहुत बड़ा पोषक उठ गया।

'कन्या-पितृत्व' घटना-क्रम और विषय की दृष्टि से स्व० श्री माधवैय्या की एक विशिष्ट कहानी है। हिंदू-समाज में कन्या के विवाह को लेकर जो कुरीतियाँ आ बैठी हैं उनका इसमें नग्न-चित्र है। समाज में बेटीवाले को मानो लूटने के लिए ही बेटेवालों का जन्म हुआ। कहानी इस विषय को लेकर बहुत सफलता से चित्रित हुई है। कन्या के पिता की विपत्तियों का इस कहानी में बहुत ही यथार्थ चित्रण है।

नागनाथय्यर द्वारा कहे गये कहानी में ये शब्द 'जिन्होंने मुझे इस हालत पर पहुँचाया है, वे ही इस पाप के भागी होंगे'—भारत के प्रत्येक ऐसे नवयुवक के, जो विवाह करने जा रहा हो, गम्भीर चिन्तन का विषय है।—सं०]

कन्या-पितृत्व

मेडिकल कॉलेज मे चार साल की पढाई खतम होते ही, मैने डाक्टरी पास की और असिस्टेंट सर्जन नियुक्त हुआ। इस गाँव मे प्लेग होते ही मेरी यहाँ तबदीली हो गई।

एक दिन शाम को नागनाथय्यर नाम के एक व्यक्ति अपनी स्त्री और वेटी के साथ 'प्लेग कैंप' मे चले आये। उनकी वेटी रमणी की उम्र क़रीब बारह साल की थी। गौर वर्ण, कोमल गात और काली

लवी आँखे—लड़की सुन्दर थी। उन्होंने कहा कि उसी को प्लेग हो
गया है और इसी कारण से कैंप मे आये हैं। लेकिन जाँच करने प
मालूम हुआ कि उसे प्लेग नहीं हुआ है। मैंने कहा—इसको शीतल
की छूत लगी है, घर लौट जाइये। जब नागनाथय्यर ने मुझसे अ
नय-विनय की कि वे घर जाना नहीं चाहते और कैंप मे ही दस दि
रहेंगे, तब मुझे आश्चर्य हुआ। दरअसल प्लेगवाले भी कैंप मे रहन
नहीं चाहते थे। प्लेग हुए बिना ही ये क्यों यहाँ रहना चाहते हैं, य
जानने की मेरी उत्कण्ठा बढ़ी। मैंने उन्हें एकान्त मे बुलाकर उनक
हाल पूछा। उन्होंने अपनी राम-कहानी सुनाई—

'मै पुलीस-विभाग मे तीस साल काम कर चुका हूँ। अपने पचपन
साल मे मासिक ८) पेन्शन के साथ मैंने अवकाश ग्रहण कर लिया
रिटायर होते वक्त अमरावती के किनारे मेरा अपना एक घर था औ
सेठ के पास छः हज़ार की रकम जमा थी। सभी जायदाद मेरी ही कमा
हुई थी। तीन बार मुझपर रिश्वत लेने का इलज़ाम लगाया गया। उ
मे क़रीब चार हजार रूपए फूँक दिये। नहीं तो मेरे हाथ मे काफी पैसा ज
रहता। मेरी पहली पत्नी के एक लड़की थी। मेरे रिटायर होते व
उसकी अवस्था ग्यारह साल की थी। उसका विवाह करना था। दूस
पत्नी के भी चार छोटी-छोटी लडकियाँ थी। बेटा न होने के कारण इ
रमणी को ही हम रमणा पुकारने लगे और उसे ही अपना पुत्र समझ
लगे। पेन्शन पाने के बाद मैं अपनी बडी बेटी के लिए वर ढूँढ़
निकला। आठ सौ रुपए वर-शुल्क पर एक मैजिस्ट्रेट के लड़के से शाद
तय हुई। उस शादी मे कुल अठारह सौ रुपए लग गये, तो भी न त

मधी ही खुश हुए और न जमाई ही। दीपावली आदि के वक्त निमन्त्रण
जने पर भी दामाद न आये। मेरी भेजी हुई चीजों की पहुँच तक
उन्होंने नहीं लिखी। एक बार मै समधी के यहाँ गया था।
मुझे वहाँ जो मान-मर्यादाएँ मिली, भगवान न करे, वह मेरे
गत-जनम के वैरी को भी मिले। लड़की सयानी हुई। पाँच
सौ रुपए खर्च कर गौने के लिए इतजाम किया गया। ऐन
मौके पर, जब पुरोहित महाराज गर्भाधान का मत्र जप रहे थे,
समधिन ने लड़के को उपदेश दिया--उठो बेटा! छोड़ दो तुम
इनको। मै किसी दूसरी लडकी से तुम्हारा ब्याह कराऊँगी। बात यह
थी कि मेरे दिये हुए बर्तन-भाँड़े आदि से समधिन को सन्तोष न हुआ
और उन्होंने मुझे बहुत-कुछ खरी-खोटी सुनाई। लडका बी० ए० पास
था। मैंने समझा, बुद्धिमान् होगा समझाने पर मान जायगा।
लेकिन बड़ी देर तक आरज्-मिन्नत करने पर भी कुछ फायदा न हुआ।
आखिर सेठ के पास से दूने ब्याज पर ५००) का कर्ज लिया और तब
कहीं जाकर समधिन का दिल ठडा हुआ। यह तो हुई बडी बेटी
की बात।

फिर दूसरी पत्नी की पहली बेटी का विवाह करना था। मेरी
बेटियाँ सभी सुन्दर हैं। आप रमणी को ही दृष्टान्त के लिए ले लीजिये।
मेरी पेन्शन तो कुटुम्ब के लिए भी काफी नहीं थी। पर ये सब बातें
सुनता कौन है? ९५०) पर एक लडके से शादी पक्की हुई। इससे
कम दाम के लड़के देवीजी को अच्छे न लगे। आप तो मेरे पुत्र-जैसे
हैं। आपसे कहने में लाज क्या है? इतने पर भी 'गिलट' के नकली

गहने ख़रीदकर अमीर का स्वाँग बनाना पड़ा। दूसरी छोटी लड़की सात
वर्ष में थी। इसलिए यह निश्चय हुआ कि दोनो के व्याह एक साथ हो
जायँ तो ख़र्च कम होगा। उसके लिए भी वर की खोज हुई। पालघाट
में बारह साल का एक लड़का मिला। ५००) पर बात तय हुई। उन्होंने
जो-जो शर्तें बतलाई, सब मैंने मान ली। जमाई के लिए कितनी लंबी
चौड़ी ज़री के किनारवाली धोती ख़रीदनी चाहिये, बाजा बजानेवाला
कितना अनुभवी और होशियार होना चाहिये, कितने वज़न के लड्डू
बनाने होंगे, कम-से-कम एक दिन के लिए नाच होना कितना आवश्यक
है—आदि सब बाते उन्होंने बता दी। मै मान गया। तिस पर भी जब
पालघाटवालो को मालूम हो गया कि पहली बेटी के लिए ९५०) का
वर-शुल्क दिया गया तो उन्होंने मेरी ऐसी बेइज़्ज़ती कराई कि कुछ
कहिये मत। जनवासा हमारे ठहरने के लिए काफ़ी नहीं है, हमारे लिए
गाड़ी का ठीक बंदोबस्त नही हुआ, स्टेशन पर हमें कॉफी, टिफ़िन कुछ
भी नही मिला—ऐसी ही हजारो शिकायतो की बौछार की गई। अन्त
मे दो सौ रुपए और न देने पर वे वापस जाने के लिए तैयार हो गये।
पाँच सौ तो दिये ही जा चुके थे। अब और कोई उपाय न था। दो सौ
और दिये। किसी तरह शादी हो गई। विवाह के बाद उनके चले
जाने पर मैंने हिसाब लगाया तो पता लगा कि कुल २५००) शादी में
लग गये।

मैंने पूछा—आपने ऐसे पानी की तरह रुपए क्यों बहा दिये?
आपको ग़रीब कुटुम्बों से सबंध करना था।

नागनाथय्यर ने कहा—

'क्या कहूँ ? शायद आप अभी कन्या के पिता नहीं हुए हैं ! 'हम चाहे भले ही दु ख भोगे, लेकिन अपनी बेटी कही सुख से रहे,' यही सोचकर हम उन लोगों से सबन्ध किया करते हैं, जिनके यहाँ कम-से-कम खाने-पीने तक की जायदाद हो। इसी कामना से मैंने भी रुपए खर्च किये थे। देवीजी ने भी इस कार्य मे मुझे प्रोत्साहित किया। उसके बाद मेरे घर मे दरिद्रता आ बसी। बेटियों का प्रसव, दीपावली, वर-लक्ष्मी-व्रत, कृत्तिकादीप, स्थालीपाक, ऋतुस्नान—ऐसे ही हज़ारों पचडे थे, जिनके लिए पैसे की अत्यन्त आवश्यकता थी। आप पढे-लिखे हैं। यह तो बताइये कि दुनिया-भर के और किसी भी देश मे बेटीवाले को तबाह करने के लिए इतने मार्ग स्थापित हुए हैं ?

अब मेरे हाथ की पूँजी भी जाती रही। उधार लेने के सिवाय दूसरा रास्ता ही क्या था ? कुछ दिन तक प्राइवेट वकालत की। पर बीमारी के कारण काम न कर सका। बाज़ार मे ८००) का कर्ज हो गया। ३५०) का तो इधर-उधर का कर्ज था। और दो बेटियाँ ब्याह के लिए तैयार थी। सोचा, कही भाग जाऊँ। देवीजी ने कहा—एक होटल चलाओ तो किसी तरह जीवन चल जायगा। बेटी तेरह साल की हो गई थी ; इसलिए तुरन्त उसका विवाह करना ज़रूरी था। पास के गाँव के ही पुरोहित का एक लडका था, जो सब-रजिस्ट्रार के ऑफिस मे क्लर्की करता था। मेरी बेटी उसकी द्वितीय भार्या होनेवाली थी। उसने छः सौ रुपया नकद माँगा। मैंने सोचा, किसी भी तरह अपनी बेटी ही तो घर की स्वामिनी बनी रहेगी। इसलिए अपना घर ६००) के बदले लड़के के पिता को दे डाला। सब क़र्ज चुकाकर बचे हुए २००) लेकर, गये

साल मै यहाँ चला आया। इधर मैने एक होटल चलाया। उसमें नुक-सान ही नुकसान हुआ। जो कुछ था, वह भी चला गया। इतने में प्लेग का रोग भी यहाँ आ धमका। हमारी उम्र तो अब बीत ही चली है। फिर बेटी की उम्र भी अब बढ गई है। उसके विवाह की चिंता रात-दिन हमे पीसे डालती है। न खाना, न कपडा। रात मे नींद आये तो कैसे ? गनेसजी के मदिर में एक कोढी बुढ़वा बैठा है, जिसकी आयु चालीस साल के ऊपर होगी। वह कहता है, तीसरी पत्नी के रूप मे मै रमणा का पाणि-ग्रहण करूँगा। हाय, हाय ! उसके हाथ मे सौंपने की अपेक्षा, बेटी को किसी अन्धकूप मे गिरा देना बेहतर होगा। कई दिन हुए, हम पति-पत्नी को भर-पेट भोजन भी नहीं मिला। अगर आपकी कृपा होगी तो यहाँ दस दिन तक भर-पेट खाने को मिल जायगा।

मेरी आँखे डबडबा आई। उनको पत्नी ने कहा—रेल का किराया अगर मिल जाय तो हम त्रिचिनापल्ली, मदुरा या और कहीं जहाँ प्लेग का उपद्रव न हो, चले जायँगे। मैने एक दस रुपए का नोट निकालकर उन्हें दिया और कहा—वैसा ही कीजिये। वे चले गये।

दो महीने बीत गये। मैने समझा, वे इस गाँव को छोड़कर कहीं चले गये होंगे। गये हफ़्ते मे अचानक उनकी पत्नी मेरे पास दौड़ी आई और घबराहट के साथ बोली—डाक्टर साहब, रमणा को सचमुच ही प्लेग हो गया है। जल्दी चले चलिये। उसको बचाने पर आपको बडा पुण्य मिलेगा।

मैने पूछा—अब तक आप लोग यहीं हैं ? वे कहाँ हैं ?

'हम लोग यही पर हैं । वे और कहीं जाना नही चाहते । आपने
ा-पूर्वक जो रुपए दिये थे, वे भी खाने-पीने में लग गये । वे अक्सर
्ते रहे—यहीं रहने पर प्लेग आयगा, प्लेग आयगा । परसों सचमुच
ी को प्लेग लग गया । मैंने उसी दिन आपको बुलाने को कहा । वे
द तो आपके पास आना नही चाहते थे , मुझे भी आने से रोक दिया ।
ससे बिना कहे ही मैं आपके पास आई हूं । आकर देखिये, मेरी बच्ची
'—यह कहकर वह रो दी ।

मैं उनके साथ तुरन्त चल पड़ा ।

नागनाथय्यर चबूतरे पर मुँह ढँककर बैठे थे ।

'आपको किसने बुलाया ? मेरी बेटी को प्लेग नहीं है ।'—वे
ले ।

मैंने कहा—मै अभी देखता हूँ, चलिये ।

'नही, मैं नहीं आऊँगा । अगर आप चाहते हैं तो जाकर देख
लीजिये ।'

अन्दर से 'पिताजी, पिताजी' की आवाज आ रही थी । अपने स्थान से वे हिले तक नहीं । मैंने भीतर जाकर देखा । डॉक्टर की हैसियत से मैंने कितने ही घोर दृश्य देखे हैं । लेकिन उस दिन उस घर मे मैंने जो दृश्य देखा था, वह जन्म भर भूलने का नहीं । वह लडकी चूल्हे के पास ज़मीन पर पडी हुई मरण-वेदना से कराह रही थी । उसी के पास दो मरे हुए चूहे पड़े थे, जिनकी बदबू से नाक फटी जाती थी । प्यास बुझाने के लिए उसने जो घड़ा हाथ से खीचा था, वह लुढककर

सारा पानी कोठरी भर में फैल गया था। उसी कीचड़ में व
पड़ी थी।

दो-तीन बार मैंने नागनाथय्यर को पुकारा। वे न आये, न जवा
ही दिया। मैंने उसे एक सूखा कपड़ा पहनाकर दूसरी जगह पर लिटा
को कहा। प्लेग कैंप में उसे ले जाने के लिए नागनाथय्यर की अनुम
माँगी। लेकिन उन्होंने कह दिया—नहीं, नहीं; भगवान् जो चाहेग
वही होगा।

'अरे पापी! अपनी बेटी की इस तरह हत्या क्यों कर रहे हो
परसों जो प्लेग लगा था, उसकी सूचना अब तक आपने मुझे नहीं दी
अब तो बचने की आशा नहीं है। फिर भी वहाँ ले जाकर बचाने
भरसक कोशिश करूँगा। आप और देवीजी, दोनों चलें। आप दो
के लिए अच्छे भोजन की व्यवस्था। करूँगा। आपकी बीमारी के लि
भी दवा दूँगा।'

'वहाँ जाने पर रमणा शायद बच जायगी?'

'*बच जायगी; जहाँ तक मुझसे बनेगा, मैं प्रयत्न करूँगा।*'

'नहीं, नहीं। यहाँ से मैं उसे ले जाने नहीं दूँगा।'

'ऐसा क्यों कहते हैं? आप चाहते हैं कि वह न बचे?'

'ये सब बातें आप क्यों पूछ रहे हैं? भगवान् की जो मर्जी हो
वही होगा।'

इतने में उनकी पत्नी भीतर शोर मचाकर रोने लगी। मैंने जा
देखा। रमणी अपनी मा की गोद में मरी पड़ी थी।

मैं बाहर चला आया और मन की कटुता व्यक्त करते हुए कहा

आपकी इच्छा पूरी हुई। रमणी मर गई। लेकिन उसकी हत्या आपके ही सिर पड़ेगी।

'सब भगवान् की इच्छा है। भगवान् अनाथ पर कृपा करेंगे। मै हत्यारा नहीं हूँ। जिन्होंने मुझे इस हालत पर पहुँचाया है, वे ही इस पाप के भागी होगे। ईश्वर अधा नहीं है, उसकी भी आँखें होती हैं।' —नागनाथय्यर ने कहा।

देवसेना

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

[श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का जन्म १८७८ ई० में हुआ था। ी राजगोपालाचार्य को जो सफलता राजनैतिक क्षेत्र में मिली ', वह उनकी साहित्यक प्रसिद्धि को काफी हद तक अँधेरे में रखती '। आज बहुत कम लोग जानते हैं कि मद्रास की कांग्रेस-सरकार े प्रधान मंत्री राजाजी तमिल भाषा के श्रेष्ठ निबंधकार, कहानी-लेखक एवं शब्द-संग्रहकर्ता हैं। सामाजिक क्षेत्र में भी उन्हें कम प्रसिद्धि नहीं मिली है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका जन्म ही सद्भावों के प्रचार के लिए हुआ है।

श्री राजगोपालाचार्य ने कहानियाँ प्रचारात्मक दृष्टि से लिखी हैं। र उस दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर भी उन्होंने कला को अपनी दृष्टि से ओझल होने नहीं दिया है। आपकी कहानियों की सरलता और मार्मिकता जितनी प्रिय वस्तु गाँव के रहनेवाले गँवारों के लिए है, उतनी ही अध्ययन-योग्य शिक्षित एवं सुसंस्कृत सहृदयों के लिए भी है। आपकी भाषा सरल, साफ-सुथरी, अलंकृत एवं मधुर होती है। आपकी भाषा विदेशीय प्रभाव से मुक्त है। आपकी श्रेष्ठ कहानियों का एक संग्रह 'राजाजी की कहानियाँ' नाम से गतवर्ष प्रकाशित हुआ था। आपने 'कृष्ण का मार्ग', 'उपनिषदों की सीढ़ियाँ' नामक आध्यात्मिक ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनसे आपके गम्भीर अध्ययन और क्रियात्मक चिंतन का परिचय हमें मिलता है। तमिल के पारिभाषिक शब्दों को एकत्रित करने में भी आपने बड़ी सहायता की है।

'देवसेना' आपकी कहानियों में एक विशिष्ट स्थान रखती है। यद्यपि 'देवसेना' में किसी विषय-विशेष का प्रचार नहीं किया गया है,

पर आज की हमारी सामाजिक दशा का यह एक बहुत ही
सजीव एवं यथार्थ चित्रण है—व्यवसाय की मंदी, बेकारी,
हड़ताल, व्यभिचार और भिखारियों की समस्या आज की वर्त
समस्याएँ हैं। 'देवसेना' कहानी में एक बहुत बड़ी आघातक
शक्ति है जो हमें विचार करने पर विवश करती है। यहीं पर 'दे
की सफलता का रहस्य है। यहीं पर राजाजी की पैनी दृष्टि का
परिचय मिलता है।—सं०]

देवसेना

(१)

रामनाथय्यर और उनकी पत्नी सीतालक्ष्मी चाइना बाज़ार गये और कुछ चीज़ें ख़रीदने के बाद, पास के होटल में जल-पानकर, अपनी मोटर में आ बैठे।

'समुद्र के किनारे चलें ?'—रामनाथय्यर ने पूछा।

'बीच' (Beach) पर ? किसी ऐसी जगह में गाड़ी रोकने को

कहिये, जहाँ लोगों की भीड न हो। भीड़-भडक्के में जाना मुझे नहीं। वहाँ देखिये, खिलौने बिक रहे हैं। दो-चार खरीद लो बच्चों के लिए ले जायेंगे।'

सीतालक्ष्मी का इतना कहना था कि खिलौनेवाला गाडी के आ गया। वह किसी तरह सीतालक्ष्मी के मन की बात ताड़ गया। पत्नी गाडी मे बैठे-बैठे खिलौने चुन रहे थे और भाव पटा रहे थे। के दूसरे दरवाजे के पास एक युवती भिखारिन एक नन्हे बच्चे को मे ले सबको दिखाकर कह रही थी—महाराज, धरम कीजिये। वालक है, मा !

रामनाथय्यर ने पूछा—सभी जापानी खिलौने हैं न ?

व्यापारी ने कहा—जापानी ही हैं, और क्या ? हमारे यहाँ खिलौने बनते कहाँ हैं ?

भिखारिन ने फिर गिडगिड़ाकर प्रार्थना की।

सीतालक्ष्मी ने कहा—सौदा करते वक्त यह क्या बला है ? शहर मे भिखारियों का उपद्रव बहुत ज्यादा हो गया है।

'भूख लगती है, भाई, आँख उठाकर देखो, मा ! भगवान् तु भला करे !'—भिखारिन ने कहा।

सीतालक्ष्मी ने डाँटा—जाओगी कि पुलिस को पुकारूँ ?

'दूध के बिना बच्चा तडप रहा है, मा ! एक आना भीख दो, कितने ही तो खर्च हो रहे हैं, महारानी !'

रामनाथय्यर भाव ठहराकर मोल ली हुई चीजों को मोटर में हुए बोले—चलो, बीच चले।

, ड्राइवर ने भिखारिन को हट जाने का सकेत किया और गाड़ी
ती ।

'महाराज, महाराज' कहती हुई भिखारिन कुछ दूर तक गाडी को
ड़े हुए दौड़ी आ रही थी ।

'दौडो मत—मर जाओगी !'—रामनाथय्यर ने कहा । भिखारिन
मुँह उनको कहीं देखा हुआ-सा जान पडा । गाडी तेजी से चलने
ी, तो उन्होंने कहा—लडकी वेचारी छोटी है । शक्ल देखने से तो
पने गाँव की मालूम होती है ।

'कोई भी गाँव की हो होगी कोई चुड़ैल ! उससे हमे क्या करना
? दीजिये, देखूँ तो वह नया खिलौना क्या है, ऐरोप्लेन ? चाभी देने
है या मामूली खिलौना है ?'

खिलौनो को एक-एक करके देखते हुए वे समुद्र-तीर पहुँचे ।

(२)

सेलम मे पेरियण्णामुदलि गली मे ग़रीब जुलाहो का एक कुटुम्ब था।
यापुरि की उम्र तीस थी। उसकी बहन देवसेना बीस की थी उसका
याह नहीं हुआ था । उनकी मा का नाम था पलनियम्माल । तीनों
पने पुराने परम्परागत जुलाहे के धन्धे से कष्टमय जीवन व्यतीत करते
। दिन-भर की मेहनत करके तीनो मिलकर एक हफ्ते मे चार रुपए
माते थे ।

कई साल से करघे का व्यवसाय ठडा होता गया । मजदूरी घटने
गी । बाद मे कम मज़दूरी के भी न मिलने से लोगो की हालत ख़राब
ई । सेलम में कई सेखो के साथ वैयापुरि की सेख भी बेकार पडी थी ।

देवसेना दो ब्राह्मण अफ़सरों के यहाँ घर की सफ़ाई और काम-काज
देती थी, जिससे उसको मासिक तीन रुपए मिल जाते थे। प्रति
भी एक घर में लीप-पोतकर एक रुपया कमा लेती थी। वेयापुरि क
के मालिकों के पास नौकरी के लिए भटकता फिरा। जब कहीं नौ
नहीं मिली, तो वह अपनी माँ से बिदाई लेकर बंगलोर चला गया।
मिल में नौकरी पाने की उम्मीद से कई मुदलि लोग भी उसके
हो लिये।

वेयापुरि का पत्र आया कि कई दिन की कोशिश से मिल में नौ
लग गई है। वेयापुरि कुछ लिखना-पढ़ना जानता था। बचपन में उ
पिता ने उसे मुहल्ले के म्यूनिसिपल स्कूल में शामिल कराया था।
दिनों जुलाहों का जीवन इतना कष्टमय नहीं था।

पड़ोसी मारियप्पा मुदलि के लड़के ने वेयापुरि के पत्र को
सुनाया—'गली-गली छानने पर, कितनों की मुट्ठी गरम कर,
मिल में नौकरी मिली है। रोज़ आठ आने मज़दूरी मिलती है। म
में छब्बीस दिन काम करने पड़ते हैं, इसलिए तेरह रुपए मिले
इस महीने की तनख़्वाह खाने-पीने में और कर्ज़ चुकाने में
जायगी। अगले महीने से तुम लोगों को महीने दो रुपए भेज सकूँ
आगे ईश्वर है।'

बुढ़िया और देवसेना के आनन्द की सीमा न रही।

× × ×

दस दिन बाद, एक और ख़त मिला—माता को साष्टांग
स्कार। यहाँ ईश्वर की कृपा से सब कुशल है। आशा है, देवसेना

: कुशल-पूर्वक होगी। यहाँ मिल का काम मुझे अच्छा नहीं लगता। न दिनों की याद करके, जब मैं अपने करघे पर बैठा काम कर रहा , मैं आँसू पीकर रह जाता हूँ। यहाँ मै पागल-सा हो रहा हूँ। सिर में क्कर आता है। मैं अपने दु:खों और झंझटो का वर्णन नहीं कर कता। न-जाने क्यों मै गाँव छोडकर इधर चला आया! पडोस के वाले लड़के के द्वारा, अगर हो सके तो, चिट्ठी लिखना। मेरा पता —सेलम वैयापुरि मुदलि, मल्लेश्वरम् कुली लाइन।'

(२)

देवसेना जिन दो घरों मे काम-काज करती थी, उनमे से एक, क पेन्शनर का घर था। उनकी स्त्री अच्छे स्वभाव की थी। वह म लेने में सख्त थी, पर अन्य बातों मे प्रेम का बर्ताव रखती । उसने देवसेना को अपनी एक पुरानी साडी दी। रसोई मे बची चीजें भी—भात और कढी, पापड और खीर—उसे ही मिलती। स तरह कितने ही दिन बीत गये।

शायद भगवान को देवसेना का शान्तिमय जीवन मजूर न था। स घर का रसोइया—देवसेना को बचे हुए भोजनादि देनेवाला—सके साथ रसीली बातें करता। एक दिन उसने उसकी इच्छा के रुद्ध उसके साथ छेडछाड़ की।

देवसेना की आँखों में खून उतर आया; लेकिन मारे लज्जा के सने यह बात किसी से नही कही। उस धूर्त ने लालच दिया था—सी से कहना मत; तुझे मासिक दो रुपए दूँगा।

देवसेना आँसू पीकर रह गई। उसने घर जाकर अपनी

कुशल-पूर्वक होगी। यहाँ मिल का काम मुझे अच्छा नहीं लगता। दिनों की याद करके, जब मैं अपने करघे पर बैठा काम कर रहा, मैं आँसू पीकर रह जाता हूँ। यहाँ मै पागल-सा हो रहा हूँ। सिर में कर आता है। मै अपने दु:खों और झंझटों का वर्णन नहीं कर सकता। न-जाने क्यों मैं गाँव छोड़कर इधर चला आया! पड़ोस के वाले लड़के के द्वारा, अगर हो सके तो, चिट्ठी लिखना। मेरा पता —नेलम वैयापुरि मुदलि, मल्लेश्वरम् कुली लाइन।'

(२)

देवसेना जिन दो घरों में काम-काज करती थी, उनमें से एक, क पेन्शनर का घर था। उनकी स्त्री अच्छे स्वभाव की थी। वह म लेने में सख्त थीं पर अन्य बातों में प्रेम का बर्ताव रखती। उनने देवसेना को अपनी एक पुरानी साड़ी दी। रसोई में बची चीजें भी—भात और कढ़ी, पापड़ और खीर—उसे ही मिलती। तरह कितने ही दिन बीत गये।

शायद भगवान को देवसेना का शान्तिमय जीवन मंजूर न था। स घर का रसोइया—देवसेना को बचे हुए भोजनादि देनेवाला—सके साथ रसीली बातें करता। एक दिन उसने उसकी इच्छा के रुद्ध उसके साथ छेड़छाड़ की।

देवसेना की आँखों में खून उतर आया; लेकिन मारे लज्जा के सने यह बात किसी से नहीं कही। उस धूर्त ने लालच दिया था—सी से कहना मत; तुझे मासिक दो रुपए दूँगा।

देवसेना आँसू पीकर रह गई। उसने घर जाकर अपनी

मा से कहा—मैं उस नीम के पेड़वाले घर में काम नहीं करूँगी मा !

जब मा ने उसका कारण पूछा तब देवमैना ने बड़े दुख के साथ सारी हकीकत कह सुनाई । बुढ़िया ने कहा—मैं सारी बात घर की मालिकिन से कहूँगी ।

देवमैना बोली—नहीं मा उनसे कहने से फायदा ही क्या है मैं फिर वहाँ काम पर नहीं जाऊँगी ।

और जगह नौकरी की तलाश की गई पर हरएक घर में न कोई नौकरानी काम पर थी ही । दो महीने इधर-उधर भटकने एक घर में नौकरी मिल गई ।

× × ×

छः महीने गुजर गये । बङ्गलोर में उस मिल में जहाँ बेचारा काम करता था, हड़ताल मनाई गई । साहब ने किसी मिस्त्री पर हाथ चला दिया था । उसके बाद वह मिस्त्री और कुछ कुली काम से निकाले गये । इस कारण मजदूर यूनियन की बैठक हुई जिसमें यह प्रस्ताव पास हो गया कि उस महीने के वेतन के मिलते ही हड़ताल शुरू की जाय । वेंकटापुरि को भी इसमें शामिल होना पड़ा ।

एक महीने तक हड़ताल चालू रही । मजदूरों की सभाएँ हुई और बड़ी हलचल मची । आरम्भ में उद्वेग कुछ अधिक था पर ज्यों-ज्यों पैसे की कमी होती गई, त्यों-त्यों उनका जोश भी ठंडा पड़ता गया । चन्द सरकारी अफसरों ने अन्त में सुलह कराई । सब लोग फिर मिल में काम करने लगे । एक हफ्ते के बाद गेट पर नोटिस लगाया गया

[गल्प संसार मा

—'पचीस कामगार काम से हटा दिये गये हैं, और वे मिल में वेश न करें।' वैयापुरि भी उन पचीसों में से एक था।

वैयापुरि ने अपने मिस्त्री से कहा—अरे, मैंने क्या पाप किया ा? मैं तो नया आया था और किसी में शामिल भी नहीं हुआ।

मिस्त्री ने जवाब दिया—बड़े साहब का हुक्म है। यह सब उस त्यारे 'टाइम-कीपर' रंगस्वामी नायकन की करतूत है। और नामों के ाथ तुम्हारे नाम को भी सूची में मिलाकर उसने साहब के पास दे दिया । इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता।

रंगस्वामी नायकन के पास बड़ी नम्रता के साथ अपील की गई। उसने कहा—'मैं कुछ नहीं जानता। यह सब वेतन-बँटवारा करनेवाले गुमाश्ता अय्यर का काम है।

हर किसी के पास बार-बार जाकर अनुनय-विनय करने पर भी कुछ नहीं हुआ। मेनेजर ने कहा—तुम लिखना-पढ़ना जानते हो, और लोगों को तुमने भड़काया है, इसलिए हम तुमको काम पर नहीं ले सकते।

× × ×

कई दिन घूम-घामकर, हाथ के सब पैसे खतमकर, बहुत तकलीफ के साथ वैयापुरि मदरास आ पहुँचा। उसके साथ ही और दस कामगार, जो उस मिल से निकाले गये थे, नौकरी की खोज में मदरास आये। उन्होंने अपने सब पैसों को आपस में बाँटकर भोजन का खर्च निकाला, और आठ दिन तक इधर-उधर भटकते फिरे।

वैयापुरि को एक मिल में नौकरी मिली। 'गेटकीपर' और छोटे-

मा से कहा—मै उस नीम के पेडवाले घर मे काम नही करूँगी मा !

जब मा ने उसका कारण पूछा, तब देवसेना ने बडे दुःख के साथ सारी हकीक़त कह सुनाई । बुढिया ने कहा—मै सारी बात घर की मालिकिन से कहूँगी ।

देवसेना बोली—नहीं मा, उनसे कहने से फायदा ही क्या है! मै फिर वहाँ काम पर नही जाऊँगी ।

और जगह नौकरी की तलाशी की गई, पर हरएक घर मे कोई न कोई नौकरानी काम पर थी ही । दो महीने इधर-उधर भटकने पर एक घर मे नौकरी मिल गई ।

× × ×

छ महीने गुजर गये । बङ्गलोर मे उस मिल मे जहाँ वैयापुरि काम करता था, हडताल मनाई गई । साहब ने किसी मिस्त्री पर हाथ चला दिया था । उसके बाद वह मिस्त्री और कुछ कुली काम से निकाले गये । इस कारण मजदूर-यूनियन की बैठक हुई, जिसमे यह प्रस्ताव पास हो गया कि उस महीने के वेतन के मिलते ही हडताल शुरू की जाय । वैयापुरि को भी इसमे शामिल होना पडा ।

एक महीने तक हड़ताल चालू रही । मजदूरो की सभाएँ हुई और बडी हलचल मची । आरम्भ मे उद्वेग कुछ अधिक था, पर ज्यो-ज्यो पैसे की कमी होती गई, त्यो-त्यो उनका जोश भी ठडा पडता गया । चन्द सरकारी अफसरो ने अन्त मे सुलह कराई । सब लोग फिर मिल मे काम करने लगे । एक हफ्ते के बाद 'गेट' पर नोटिस लगाया गया

कि—'पचीस कामगार काम से हटा दिये गये हैं, और वे मिल मे प्रवेश न करें।' वैयापुरि भी उन पचीसों मे से एक था।

वैयापुरि ने अपने मिस्त्री से कहा—अरे, मैंने क्या पाप किया था? मैं तो नया आया था और किसी मे शामिल भी नही हुआ।

मिस्त्री ने जवाब दिया—बड़े साहब का हुक्म है। यह सब उस हत्यारे 'टाइम-कीपर' रगस्वामी नायकन की करतूत है। और नामों के साथ तुम्हारे नाम को भी सूची मे मिलाकर उसने साहब के पास दे दिया है। इसमे मैं कुछ नहीं कर सकता।

रगस्वामी नायकन के पास बडी नम्रता के साथ अपील की गई। उसने कहा—'मै कुछ नहीं जानता। यह सब वेतन-बँटवारा करनेवाले गुमाश्ता अय्यर का काम है।

हर किसी के पास बार-बार जाकर अनुनय-विनय करने पर भी कुछ नही हुआ। मैनेजर ने कहा—तुम लिखना-पढ़ना जानते हो, और लोगो को तुमने भडकाया है, इसलिए हम तुमको काम पर नहीं ले सकते।

× × ×

कई दिन घूम-घामकर, हाथ के सब पैसे खतमकर, बहुत तकलीफ के साथ वैयापुरि मदरास आ पहुँचा। उसके साथ ही और दस कामगार, जो उस मिल से निकाले गये थे, नौकरी की खोज में मदरास आये। उन्होंने अपने सब पैसो को आपस में बाँटकर भोजन का खर्च निकाला, और आठ दिन तक इधर-उधर भटकते फिरे।

वैयापुरि को एक मिल मे नौकरी मिली। 'गेटकीपर' और छोटे-

करना छोड दिया। दिल थामकर वह उसके साथ हँसी-खुशी से बोलने चालने लगी। दिन पर दिन उसमें वह आनन्द का अनुभव करने लगी। उसकी मज़दूरी भी बढ़ गई।

कई महीने बीत गये। देवसेना को शरीर मे बाधाएँ दिखाई दीं। उसे मालूम हुआ कि उसके पाँव भारी हो गये हैं। सारे देवताओं की उसने मनौतियाँ मान ली। जगल मे शिकारी से बचने के लिए भागने वाली हिरनी की भाँति वह चकित और किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई। भाई वैयापुरि से अपनी बात कहने में उसे डर लगा। उसकी हालत को देख कुछ साथिनें उसकी हँसी-दिल्लगी करने लगी। उसने गाँव जाने का विचार किया, लेकिन उसे यह भय हुआ कि गाँववाले उसे बिरादरी से निकाल देंगे। उसकी मा इस बात को कैसे सहन करेगी, यह सोचते ही उसने गाँव जाने का इरादा छोड दिया। भगवान पर भरोसा रखकर उसी हालत मे वह मिल मे काम करती जाती थी।

एक दिन अचानक उसका मन सिहर उठा। वह खूब रोई—हाय, मैं क्या करूँ? मैंने अपने कुल को कलंक का टीका लगाया है!

उसकी साथिन बोली—घबराओ मत देवसेना, यह तो एक ऐसी घटना है, जो सब पर बीतती है। इसके लिए दवा है। तुरन्त आराम हो जायगा।

'हाँ, मैंने भी सुना है, पर मुझे डर लग रहा है। कहीं मर तो न जाऊँगी? हाय रे भगवन्! मुझे छिपने के लिए कहीं ठौर बताओ।'

करना छोड़ दिया । दिल थामकर वह उसके साथ हँसी-खुशी से बोलने चालने लगी । दिन पर दिन उसमें वह आनन्द का अनुभव करने लगी। उसकी मज़दूरी भी बढ गई ।

कई महीने बीत गये । देवसेना को शरीर में बाधाएँ दिखाई दी। उसे मालूम हुआ कि उसके पाँव भारी हो गये हैं । सारे देवताओं के उसने मनौतियाँ मान ली । जगल में शिकारी से बचने के लिए भागने वाली हिरनी की भाँति वह चकित और किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई । भाई वैयापुरि से अपनी बात कहने में उसे डर लगा । उसकी हालत को देख कुछ साथिनें उसकी हँसी-दिल्लगी करने लगीं । उसने गाँव जाने का विचार किया, लेकिन उसे यह भय हुआ कि गाँववाले उसे बिरादरी से निकाल देंगे । उसकी मा इस बात को कैसे सहन करेगी, यह सोचते ही उसने गाँव जाने का इरादा छोड दिया । भगवान पर भरोसा रखकर उसी हालत में वह मिल में काम करती जाती थी ।

एक दिन अचानक उसका मन सिहर उठा । वह खूब रोई— हाय, मैं क्या करूँ ? मैंने अपने कुल को कलंक का टीका लगाया है !

उसकी साथिन बोली—घबराओ मत देवसेना, यह तो एक ऐसी घटना है, जो सब पर बीतती है । इसके लिए दवा है । तुरन्त आराम हो जायगा ।

'हाँ, मैंने भी सुना है, पर मुझे डर लग रहा है । कहीं मर तो न जाऊँगी ? हाय रे भगवन ! मुझे छिपने के लिए कहीं ठौर बताओ ।'

की दुनिया कुछ निराली ही हो गई। वह सब कष्टों को भूल गई। बच्चा ही अब उसका सारा संसार था।

वह बच्चे को दूध पिलाती हुई कहती—यह ईश्वर की देन है। इस बेचारे ने क्या किया है? मैं ही कुल कलंकिनी हूँ। इस तरह कुछ दिनों तक वह अपनी चिन्ताओं को भूल-सी गई।

गणेश-मन्दिर की गलीवाली परोपकारिणी बाई बड़े रहम के साथ कहती—देवसेना, तुम अब काम पर नहीं जा सकती हो। और कुछ दिन यहाँ ठहर जाओ।

'दुनिया में ऐसे अच्छे लोगों के रहते मैंने भगवान की निन्दा की।' —यह सोचकर देवसेना ने परमेश्वर की वन्दना की।

एक महीने के बाद भेद खुला। वह बुढ़िया मानव-वञ्चित ललनाओं को अपने पास रखकर उनसे जीविका चलानेवाली थी। देवसेना उसके जाल में फँस गई। वह फिर कभी मिल में काम करने नहीं गई।

(५)

'सेलम में अपने घर में काम करनेवाली देवसेना को तुम नहीं जानती हो? बस, उसीके जैसी थी वह भिखारिन।'—रामनाथ य्यर ने कहा।

रामनाथय्यर उन्हीं पेन्शनर के ज्येष्ठ पुत्र थे, जिनके घर में देवसेना पहले-पहल काम में लगी थी। वे मदरास में एक बड़े बैंक के खजाञ्ची थे।

सीतालक्ष्मी बोली—सेलमवाली लड़की यहाँ क्यों आने लगी? यह आपका भ्रम है।

''न-जाने वह कौन है। कोई भी हो, बच्चे को गोद मे लिये इस तरह स्त्रियाँ भीख माँगने लगी हैं : देश की कैसी दुर्दशा हो रही है!'

'बस, आपको तो हमेशा देश का ही ध्यान लगा हुआ है। पहले अपने कुटुम्ब को तो सँभालिये।'—उनकी स्त्री ने कहा।

दूसरे दिन शाम को भी रामनाथय्यर के स्मृतिपट से उस भिखारिन का रूप दूर नहीं हुआ। वे दफ्तर से सीधे चाइना बाज़ार गये। फिर एक बार उससे मिलकर दो-दो बातें कर लेने की उनकी इच्छा थी, इसलिए वे होटल के पास ही गाडी रोककर कुछ देर तक उसकी प्रतीक्षा करते रहे। कई भिखारियों ने 'महाराज, महाराज' कहकर उन्हें घेर लिया, पर वह वहाँ नहीं थी।

दूसरे शनिवार की शाम को रामनाथय्यर और उनकी पत्नी दोनों फिर चाइना बाजार की तरफ चले।

'वह देखिये, आपकी भिखारिन!'—सीतालक्ष्मी ने कहा।

बच्चे को गोद मे लिये और 'मा, एक आना दो। इस बच्चे की ओर आँख उठाओ, मैया!' कहती हुई वह भिखारिन, कुछ दूर पर खडी दूसरी मोटर की ओर जल्दी से दौडी।

रामनाथय्यर की गाडी को देखते ही भिखारिन जान गई कि उस गाडी मे बैठे हुए लोग कुछ न देंगे, और इसीलिए वह दूसरी गाडी के पास चली गई। भिखारियों को यह ज्ञान अनुभव से होता है। हरएक बात मे अक्लमंदी और चतुराई होती है न? दूर पर खडी हुई भिखारिन को पास बुलाने में रामनाथय्यर को शरम लगी। वे कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहे। उन्होंने सोचा कि वहाँ का काम पूरा हो जाने पर

वह उनके पास आयगी, लेकिन वह भीड़ में गायब हो गई और फि
कभी नहीं दीख पड़ी।

'अच्छा, चलिये अब घर।'—सीतालक्ष्मी ने कहा।

आठ दिन के उपरान्त रामनाथय्यर और सीतालक्ष्मी सिनेमा देखन
चले। खेल था 'नलोपाख्यान'। 'गेट' पर बड़ी भीड़ थी। नई स्टा
टी० के० धनभाग्यम दमयन्ती का पार्ट अदा करनेवाली थी।

लोगों ने कहा—दूसरे 'शो' में ही जा सकते हैं। इस 'शो' के
लिए टिकट बिक चुके हैं।

रामनाथय्यर ने पूछा—फिर घर जाकर लौटें तो?

सीतालक्ष्मी के जवाब देने के पहले ही एक भिखारिन मोटर के
दरवाजे के पास आकर बोली—भैया, भीख दो।

रामनाथय्यर ने मुड़कर देखा कि वह सेलमवाली तो नहीं है। वे
उसीके ध्यान में लीन थे। यह वह नहीं, दूसरी थी।

'यहाँ गाड़ी को रोकने में भिखमगों का उपद्रव है। जल्दी घर
चलो, रामन नायर!'—सीतालक्ष्मी ने ड्राइवर को आज्ञा दी।

उसी समय एक पुलिस के सिपाही ने उस भिखारिन को मार
भगाया।

× × ×

उसी रात को रामनाथय्यर ने स्वप्न में उस भिखारिन को देखा।
उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की—तुम देवसेना तो नहीं हो? तुम्हारा
गाँव कौन सा है?

आनन्द से प्रफुल्लित आँखवाली भिखारिन बोली—मालिक, श्री

मालिक, आप सेलम के रहनेवाले हैं न ? नीमवाले घर के ही हैं न ?

उन्होंने ड्राइवर से कहा—नायर, इनको गाड़ी में चढ़ा लो।

घर जाते ही उनकी पत्नी ने पूछा—यह कौन है ? इस चुड़ैल को क्यों घर लाये ?

'इसको अपने घर में खिलाकर क्यों नहीं रख सकते ? भोजन देकर चार रुपए का वेतन भी लगा देंगे।'

'अच्छा विचार किया आपने ! दुनिया भर के निकम्मों को अपने घर में आश्रय देंगे ! वाह ! कैसा बुद्धिमानी का काम किया है ! चलो, हटो बाहर !'

भिखारिन ने कहा—मां, मैं चोरी नहीं करूँगी। तुम जो काम करने को कहो, सो करूँगी।

सीतालक्ष्मी ने कह दिया—कुछ नहीं हो सकता। चलो, बाहर।

भिखारिनी को एक रुपया देने के लिए रामनाथय्यर जेब को टटोलने लगे, पर थैली जेब में नहीं थी। इधर-उधर खोजते-खोजते थक गये। भिखारिन का बच्चा ज़ोर से रोने लगा—वे जाग उठे—स्वप्न था ! उनकी बच्ची राधा बिस्तर पर बैठी रो रही थी।

'खैर, सीतालक्ष्मी इतनी निष्ठुर नहीं हो सकती, स्वप्न ही तो है !'—यह सोचकर रामनाथय्यर प्रसन्न हुए।

× × ×

उसके बाद कई दिनों तक रामनाथय्यर ने बाज़ार-हाट, स्टेशन-सिनेमा—सब जगहों में उसकी खोज की पर वह भिखारिन उनको मिली ही नहीं। कौन जाने, वह क्या हुई ?

उन्हें किसी बात की कमी नहीं है। लेकिन अय्यगार के मन में कसक रह-रहकर उठा करती थी। बात बिल्कुल साधारण थी। लें अय्यगार उसे अपना एक 'कलक' मानते थे, और लोगों से उसका करते थे। कहा करते—मैंने तो दुनिया भर के अपराधियों को पक कर उन्हें सजा दिला दी है; लेकिन यह कैसी बात है कि मेरे हा में एक मामूली-सी चोरी हुई और मैं उसका पता न लगा सका। उ इसी बात की चिन्ता थी। उस चोरी की हकीकत मुझे मालूम होने भी अब तक मैंने उसको छिपा रखी थी। अब उसे प्रकट कर रहा मेरा यह व्यवहार उचित है या नहीं, इसका निर्णय पाठक ही करें।

× × ×

एक दिन की बात है। बलराम मेरे पास आया और कहा—अ मेरी चन्द्रमती के बँगले में हम सबका प्रीति-भोज होगा।

'चन्द्रमती कौन है?'—मैंने पूछा।

'अरे! तुमसे तो दस दिन से कहता आ रहा हूँ। चित्रकला प्रदर्शिनी में उस दिन उससे और उसकी माता से मेरी भेंट हु तभी से...'

'ओ हो! वही! तुमने तो सक्षेप में इतना ही कहा कि—एक लड़ है, उसे देखते ही रंभा और मेनका मारे लज्जा के मर जायँगी। तो तुमने मुझसे कभी कहा ही नहीं कि उसका नाम चन्द्रमती है तुम्हारा नाम हरिश्चन्द्र है...'

'उन दोनों ने अपनी सम्मति दे दी है।'

'किस लिए?'
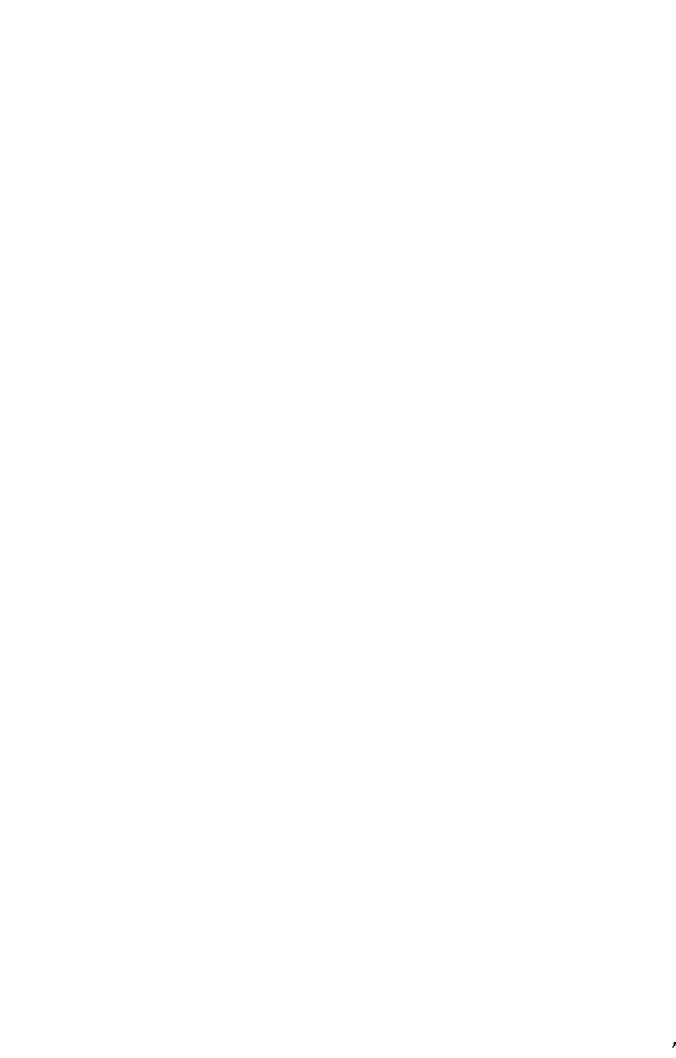
अपने साथ ले गया और वह जगह दिखा दी, जहाँ वैसे ही दस हजार के नकली नोट रखे थे।'

'वाह, वाह! तुम्हारे पास तो जाली नोट नहीं है? क्योंकि तुम उनके बँगले पर जा रहे हो न?'

'वे अपने आफिस और घर मे कोई फर्क नही रखते। सुना है, घर मे भी वे चार-चार घंटो मे एक बार, सरकारी 'जी० ओ०' की तरह हुक्म लिखकर, पुलीस कास्टेबिल के द्वारा देवीजी, रसोइया या माली के पास भेजा करते हैं।'

'तो मुझे क्या करना है? इतना तो मैं आशीर्वाद दे सकता हूँ कि इस हुक्म देने के विषय मे बेटी पिता का अनुकरण करे। कहो तो गणेशजी को नारियल भी चढा दूँ'

'नहीं, नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं है। आज शाम को मेरे साथ तुम्हे चलना होगा।'

'कहाँ?'

'उनके बँगले पर।'

'क्यों?'

'उन्होंने मुझे बुलावा भेजा है। देवीजी के कहने पर यह बात हुई है। वे चाहते हैं कि मैं आज शाम को उनके साथ टेनिस खेल कर, रात का भोजन भी वहीं करूँ और कल सवेरे उनके दफ्तर जाने तक वहीं ठहर जाऊँ।'

'ओ हो! मालूम होता है, तुम्हे खेलाकर तुम्हारी देह-शक्ति और मनोशक्ति की वे जाँच करेंगे, जैसे किसी बैल को खरीदते वक्त उन

दौड़ाकर परीक्षा किया करते हैं। भले ही करें ! इसके लिए मेरे आने की जरूरत क्या है ?'

'वे शायद जानते हैं कि सिर्फ मुझे ही बुलाने पर तुम-जैसा निठल्लू इसी तरह कहेगा; इसी लिए उन्होंने लिखा है—अपने साथ अपने एक मित्र को भी लेते आइये। चलो, 'हैट' ले आओ।'

'अच्छा, मैं निठल्लू सही; फिर कभी मौक़े पर इस बात के लिए बैर निकालूँगा। तुम्हें वे कैसे धमकाते हैं, यह देखने के लिए मैं जरूर चलूँगा।'

मेरा मित्र धन में बहनेवाला है। उसके अंगों में कोई न्यूनता नहीं है। माथा-पच्ची करके दूसरों में कभी जलन न पैदा कर, मगज़ को काबू में रखने की क्षमता भी उसमें पर्याप्त है। उसकी इच्छा के विरुद्ध बोलनेवाले बन्धु भी उसके कोई नहीं हैं। इसलिए हमारी कार्य-सिद्धि में सन्देह नहीं रहा। फिर भी हम सावधान रहे। चार बजे पहुँचने के बदले, पौने चार बजे ही हम बँगले से कुछ दूर पर जाकर ठहरे। वहीं हमने गाड़ी रोक दी और जब चार बजने में दो मिनट थे, हम वहाँ से चले। ठीक चार बजे, हम बँगले के द्वार पर पहुँचे।

हंसराज अय्यगार बहुत खुश हुए। 'आइये, आइये !'—उन्होंने भेरी-ताड़न किया—मैं हमेशा कहा करता हूँ, छोटे कामों में ही बड़े गुणों की पहचान होती है। शक्तिमान् का पहला लक्षण है, नियत समय न टालना। जो लोग इतना भी नहीं कर सकते हैं, वे राज्य का भला क्या संचालन कर सकेंगे ?

उनकी पत्नी ने कोमल शब्दों में हमारा स्वागत किया। देवीजी,

के मुख पर सौम्यता की झलक थी। फिर भी न जाने क्यों उन दोन को देखने पर, सर्कस के बाघ और उस बाघ की गरदन पर रस्सी बाँध कर उसे चलानेवाली महिला की याद मुझे हो आई।

चन्द्रमती भी कुछ लजाती हुई हमसे मिल-जुल गई। एक औरत—जो कुछ वर्ष पहले मेरे दक्षिण पार्श्व में वेदी पर बैठकर उठी थी—मेरी लिखी हरएक पंक्ति को पढ़ा करती है, इसलिए मैं चन्द्रमती के बारे में यहाँ कुछ नहीं लिखता।

पाँच बजते ही हम टेनिस खेलने गये। हम दोनों एक ओर थे और हंसराज अय्यगार तथा उनके यहाँ के एक इंस्पेक्टर दूसरी ओर। अय्यगार कैसे ही पहलवान क्यों न हों, वे अपनी चौवनवीं उम्र के पल का त्याग नहीं कर सकते थे। हमारे साथ वे दौड़ नहीं सकते थे। न जाने, उसी से क्रुद्ध थे या और कुछ, उनका चेहरा 'टमाटर' की तरह फूला हुआ था। लेकिन बलराम हमेशा की तरह खेल न सका। आसानी से पकड़ने लायक गेंद को वह कभी-कभी यों ही छोड़ देता। आखिर परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर की संख्या सम थी—पाँच 'गेम' और 'वॅन्टेजाल्'। अगर अय्यगार के मुँह के पास कोई दियासलाई ले जाता तो वह अपने-आप जल जाती। उन गेंदों को, जो हमारी हार-जीत का निर्णय करनेवाली थीं, उन्होंने 'सर्व' किया। बेचारे की थकावट, गेंद की मंद गति से स्पष्ट थी। मैंने गेंद को धक्का दिया—अपने ही मुँह से अपनी प्रशंसा करना ठीक नहीं है—द्रोणाचार्य का तीर भी शायद ही उतनी तेजी से लक्ष्य पर जा पहुँचता। हमारे दोनों प्रतिस्पर्द्धियों को लाँघ कर, गेंद सीधे कोने की लकीर के पास जा गिरी।

'सेट !'—मै चिल्लाया। इतने मे बलराम चिल्ला उठा—अरे मरे ! इस आखिरी गेंद को तुमने 'आउट' कर दिया और 'सेट' उनको दे दिया !

'आउट है ?'—मैं और अय्यगार एक साथ बोल उठे।

'इसमे क्या शक है ? डेढ़ उँगली चौड़ा 'आउट' है। मै तो देख ही रहा हूँ। गेंद यही गिरी थी'—कहकर बलराम ने अपने पैर से एक लकीर खींचकर बताई। तब किसी को सन्देह क्यों हो ? अय्यगार का मुँह खिल उठा।

'खेल बड़ा अच्छा रहा ! आप बहुत प्यासे होंगे। अभी आपके कमरे मे 'लेमनेड' भिजवा देता हूँ।'—अय्यगार हँसते हुए अन्दर दाखिल हुए।

बलराम इस तरह कमरे मे गया, मानो मेरे चेहरे को ही उसने न देखा हो। मैं उसे यों ही छोड़नेवाला नहीं था। उसकी कमीज को खींचते हुए मैंने कहा—तुम अपने को बड़ा चतुर समझते हो। मेरी जीत को मुझसे छीनकर तुमने अपने ससुरजी को दान कर दिया ?

'हुश ! चुप रहो।'—उसने कहा।

अन्दर अय्यगार की आवाज 'लाउड स्पीकर' की भाँति सुनाई दे रही थी।

'खैर, कुछ हर्ज नहीं, मेरे साथ इसी तरह खेला करेंगे तो शीघ्र ही 'टेनिस चैंपियन' बन जायँगे। अब भी उनका खेल कुछ बुरा नहीं है।'

बीच मे किसी के कुछ गुनगुनाने की आवाज कानों मे आई। फिर गर्जन की ध्वनि उठी—अभी से उनके मित्र चैंपियन-जैसे खेलते

हैं ? लानत है ऐसे खेल पर ! पढने की उम्र में पढाई की ओर अगर ध्यान देते तो, बताओ, इतनी अच्छी तरह टेनिस खेलना कैसे आता ? ..कुछ ऐसा भास हुआ कि किसी ने उनका मुँह बंद कर दिया है ।

हम लेमनेड पी रहे थे । एक कांस्टेबल कमरे में आया और सलाम कर एक परचा दिया । परचे के ऊपर 'ब० हु० 436 A' लिखा था ।

'ब० हु० क्या है ?'—मैंने पूछा ।

कांस्टेबल ने उसकी टीका की—बंगला हुक्म ।

मैंने पढ़ा—

'ब० हु० 436-A'

६ बजे से ७ बजे तक अतिथि लोग स्नान करेंगे ।

७ बजे से ७-५५ तक अतिथियों के कमरे में, घर की स्वामिनी और चंद्रमती अतिथियों के साथ बातचीत करेंगी । मालिक दफ्तर का काम देखेंगे ।

७-५५ को घंटी बजेगी ।

८ बजे भोजन होगा ।

—जी० ह० अ०

इस ख्याल से कि मैं कांस्टेबल से कुछ न कहूँ, बलराम ने मेरे पैर को खूब दबाया । मैं, यह समझकर कि प्रेम-देवता के लिए सब कुछ अर्पण करना ही होगा, दुःख और आश्चर्य को दबाकर चुपचाप बैठा रहा ।

हम अपने साथ कुछ ज्यादा कपड़े लाये थे। इसलिए हम 'ब्रं० हु० 12८-A' के मुताबिक अपनी थकावट मिटाने के लिए स्नान कर आये और गपशप करते बैठे रहे। उस बँगले में सभी काम मानो चाभी दी हुई घड़ी की तरह चलते थे। सात बज ही रहे थे कि चन्द्रमती और उसकी मा आई। कुछ देर तक क्रिकेट मैच के बारे मे और हॉल मे देखे हुए सिनेमा के बारे मे बातचीत हुई। देवीजी यह कहती हुई कि घर मे कुछ जरूरी काम है, वहाँ से उठकर चली गई। हम तीन ही रह गये थे।

दोनों के वार्तालाप मे विघ्न-स्वरूप वहाँ रहना मुझे सकट-सा प्रतीत हो रहा था। लेकिन कहाँ जाऊँ, कुछ समझ मे नही आता था। अगर कहीं बाहर निकलूँ और अय्यगार से भेंट हो जाती तो वे पूछ बैठते— ब्रं० हु० 126-A' के विरुद्ध यहाँ क्यों आये? तब मैं क्या जवाब देता? मेरी रुकावट को चन्द्रमती ने दूर किया। उसने कहा—पिताजी कहते हैं, आप एक चैंपियन की तरह खेलते हैं।

मैंने कहा—हाँ, मैंने भी कुछ-कुछ सुना था; उन्होंने वैसा ही कुछ कहा था।

'पिताजी कहते हैं, इतनी अच्छी तरह टेनिस खेलने का अभ्यास करने पर पढाई के लिए फ़ुरसत ही कब मिलेगी?'

'यह बात भी उन्होंने कही थी, मैंने ठीक-ठीक सुनी थी।'

'मेरे पिताजी कहते हैं (मीठे स्वर मे)—लड़का बहुत तेज है। और कोई होता तो पढ़ाई छोड़कर टेनिस खेलने पर बिल्कुल मूर्ख रहता।'

मैंने उस लड़की को नमस्कार किया—मैं मूर्ख हो सकता हूँ।

लेकिन मुझमें इतनी अक़्ल है कि, 'इस कमरे से बाहर जाओ'—इस वाक्य को किसी भी गूढ़ रीति से कहने पर भी मैं समझ सकता हूँ। मैं गेट के पास खड़ा-खड़ा खगोल-शास्त्र पढ़ूँगा। ७-५५ को मेरी प्रतीक्षा करें—यह कह फिर नमस्कार करके मैं बाहर चला गया।

बं० टु० के अनुसार ७-५५ पर पहली घटी बजी। मैंने कमरे में प्रवेश किया। मेरी आहट पाकर उनकी वचन-शृंखला टूट गई और वे कुछ देर असमंजस में पड़े रहे।

फिर चंद्रमती ने कहा—पिताजी आचारवान् हैं। शर्ट पहनकर भोजन करना वे पसंद नहीं करते।

तुरन्त हम दोनों ने अपना-अपना शर्ट उतार दिया।

'तुम्हारा जनेऊ कहाँ है, बलराम ?'—मैंने प्रश्न किया। उसका जनेऊ गायब था।

'गेंद खेलने के बाद जब मैंने शर्ट उतार दिया, तब जनेऊ भी उसी के साथ चला गया होगा।'—कह कर दौड़ता हुआ, वह स्नान-घर में गया। असफल प्रयास था! घड़ी की तरह काम होनेवाले उस घर में नौकर हमारे कपड़ों को धोने के लिए समेट ले गया। इतने में अध्यगार के आने की आहट सुनाई पड़ी। यज्ञोपवीत-हीन छाती को ढकने के लिए बलराम ने फिर नया शर्ट पहन लिया।

'क्यों, शर्ट उतारकर, भोजन करने चलिये।'—अध्यगार ने कहा।

बलराम को कुछ न सूझा। वह गुनगुनाया—पेट में कुछ दर्द सा हो रहा है। सोचता हूँ, रात को कुछ नहीं खाऊँगा।

'पेट में दर्द !—अय्यगार गरज उठे—इस उम्र में पेट में दर्द ! छट ! यह क्या, पेट-दर्दवाले लड़के से मेरी...'

चन्द्रमती ने उनको समझाया—आज शाम को खेलते वक्त आपने उनको खूब दौड़ा दिया होगा। इसीसे पेट में दर्द हो रहा होगा। कुछ दिन आपके साथ अभ्यास कर लेंगे तो...

अय्यगार का मुख शान्त हुआ। कह सकते हैं, स्वल्प-संतोष ही हुआ था।

उनकी देवीजी, जो ये सब बातें सुन रही थी, अफसोस करने लगी—आपके लिए 'वड़े' * और जलेबियाँ तैयार कराई हैं। कहिये तो थोड़ा जूस ही भेज दूँ ?

'जूस ! नहीं, नहीं। पेट के दर्द के लिए एक ही औषध है—लंघन। एक बार निराहार रहने से खूब खा सकते हैं'—कहकर, अय्यगार मुझे बुलाते हुए अंदर चले गये।

उस रात को मैं जब तक न सोया, तब तक बलराम भूख से तड़प रहा था। 'वड़े' और 'जलेबियाँ' का एक हजार मंत्र-जप उसने किया होगा। ग्यारह बज गये। उस जप की ओर ध्यान न देकर मैं सो गया।

आधी रात बीत चुकी थी। मैं गहरी नींद में था। बलराम ने जोर से मुझे झकझोरा। मैं जाग उठा। 'वड़े,' 'जलेबियाँ'—यही उसने कहा।

---

* एक प्रकार का भक्ष्य, जो उड़द की दाल से बनता है।

उसके गिरने की आवाज और चिल्लाहट सुनकर घर-भर में खलबली मच गई। मैं भी वहाँ से दस फीट आगे बढ़कर अपने कमरे की ओर गया। तुरन्त कमरे से आनेवाले की तरह, 'क्या हुआ? क्या हुआ!' पूछता हुआ दौड़ा और गिरे हुए पहरेदार को उठाकर बैठाया।

सौभाग्यवश, इतने में सभी जलेबियाँ खतम हो चुकी थीं और बलराम फिर मनुष्य-जन्म में शामिल हो गया था। उसने बड़ी चालाकी से काम लिया। 'चोर! चोर!' चिल्लाकर उसने स्विच दबाया। बँगला बिलकुल नये फ़ैशन का बना था और कमिश्नर का घर होने के कारण खिड़कियों में सींकचे नहीं लगाये गये थे। बलराम किसी खुली खिड़की को दिखाते हुए बोला—वहाँ भागा जा रहा है, चोर! उसी खिड़की के रास्ते से वह बाहर कूद पड़ा। कुछ कांस्टेबल भी ताने के पदक पाने की आशा में उसके पीछे उसी तरह कूदे।

करीब पन्द्रह मिनट बाद फिर शान्ति हुई। चन्द्रमती, उसकी माँ, अग्रगार और मैं—सब लोग बँगले में बैठे थे। खिड़की के रास्ते कूद कर निकलनेवालों ने सारा बाग छानकर चोर को ढूँढा, पर कहीं उसका पता न लगा। वह रात बलराम के लिए योग-दायिनी थी। बड़े और जलेबियाँ तो मिलीं ही, साथ ही कूदते वक्त उसके हाथ का पिछला भाग थोड़ा-सा छिल गया था और छोटा-सा जख्म हो गया था। निडर होकर उसने चोर को पकड़ने की कोशिश की, इसके लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही क्या थी? भावी जामाता पर अग्रगार बहुत प्रसन्न हुए।

लेकिन उनको सन्देह हुआ—चोर रसोई-घर में क्योंकर आया?

इतने में खुली आलमारी को देखकर उनकी भार्या ने आश्चर्य कट किया—अरे ! यहां बारह बड़े और सोलह जलेबियां रखी थीं ! र भी तो नहीं है !

वह पहरेदार, जो चारों खाने चित्त गिर पड़ा था, नाक पर हाथ रता हुआ खड़ा रहा ।

चन्द्रमती ने प्रश्नों का उत्तर दिया—और कुछ नहीं है, पिताजी ! र आपके 'ऑफिस रूम' में से कोई कागजात चुरा ले जाने के लिए या होगा । खिड़की खुली रहने से वह इसी रास्ते से रसोई-घर में ा और मा के रखे हुए भक्ष्यों के वशीभूत होगया ।

बलराम ने कहा—चोर के पैरों से टकराने पर यह पीढ़ा नीचे रा । उसी आवाज़ को सुनकर मैं दौड़ा आया ।

'अगर मैं कुछ देर पहले ही आ जाता तो भक्ष्य चुरानेवाला वह र इतनी आसानी से न बचने पाता और इस पहरेदार को नीचे राकर उसकी नाक न फोड़ता ।'—मैं बोला ।

इस तरह हम लोगों ने अपनी-अपनी युक्ति से सब बातों का पता ााया । अध्यगार को यही चिन्ता थी कि चोर आख़िर नहीं मिला । र अगर मिल जाता तो उनको कितनी चिंता होती, यह बात बलराम र मैं—दो ही जने जानते थे ।

चोर को ढूँढ निकालने के लिए उन्होंने इस्पेक्टर चन्द्रशेखर को न्त 'स्पेशल ड्यूटी' पर नियुक्त किया ।

चन्द्रमती कुछ न कहकर मुस्कराई । शायद उसने सोचा होगा कि ार पहले से ही अपने हाथों फँस गया है ।

हम द्वार बन्दकर सोने जा रहे थे कि उसी वक्त एक कान्स्टेबल सलाम करके एक परचा दिया। मैंने पढ़ा—

'बं० हु० 436—8'

सबेरे ८ बजे सौभाग्यवती चन्द्रमती के विवाह की बात पक्की हुआ।

प्रतिलिपियाँ—

(१) घर की स्वामिनी

(२) सौ० चन्द्रमती

(३) अतिथि-वर्ग

(४) पुरोहित शठकोपाचार्य

(५) इसके साथ लगी हुई सूची के सभी मित्र गण

जी० ह० ल

बलराम का मन शान्त हुआ। उसने पूछा—पुरोहित की प्रतिलि कौन ले जायगा ?

'मैं ही ले जाऊँगा'—कान्स्टेबल बोला।

'तब तो—' बलराम ने शर्ट से पैसे निकालकर उसके हाथ में दिये और उसके कानों में कुछ कहा—'भूलना मत। इसे पोशीदा रखा'

नहीं सरकार, भूलूँगा नहीं। एक के बजाय दो लाने को कहूँगा।

'दो क्या ?'—मैंने पूछा—'दो जनेऊ ? अजी, कान्स्टेबल ! ना कहिये। विवाह के दिन ही दो जनेऊ की ज़रूरत पड़ेगी। लेकिन उसके लिए अब 'बं० हु०' जारी नहीं हुआ। विवाह निश्चित होने वक्त एक जनेऊ काफी है। उसके बाद विवाह, सीमन्तोन्नयन आदि अपने आप चले आयेंगे'—मैंने आशीर्वाद दिया।

मीनी

[न० पिचमूर्ति 'भिक्षु']

मीनी

नानी कान्तिमती के घर में पिछली रात को ही मीनी आई होगी ; क्योंकि रात भर अलमारी से धड़ाधड़ चीज़ों के गिरने और रसोई-घर में बरतनों और करछियों के इधर-उधर लुढकने की आवाज सुनाई देती थी। बुढ़िया जान न सकी कि बात क्या है। वह थकी इतनी थी कि आधी रात में उठकर देख भी नहीं सकती थी। 'हरामखोर चूहे होंगे !'—कोसती हुई वह फिर सो गई।

दूसरे दिन मुँह अँधेरे उठकर, बुढ़िया जब प्रभाती और शिव-स्त
गाती हुई चली, तो मीनी तिरछे दौड़ी। 'मुँहजली, मालूम होता है,
तूने ही रात भर ऊधम मचाया था। आज सुबह-सवेरे तेरा ही मुख
दर्शन बदा था.. न जाने कौन सी मुसीबत आनेवाली है।'—बुढ़िया
मन ही-मन गुनगुनाने लगी।

उसके बाद मीनी दिन भर कहीं दीख न पड़ी। उस दिन बुढ़िया
जब तरकारी काटने बैठी तब उसके हाथ में चाकू की चोट तक
लगी। वह सोचने लगी—अरे, मामतर भी इस तरह कहीं झूठ हो
सकता है!

रात आई। 'फलाहार' के लिए बुढ़िया ने लड्डू बनाये। लड्डू और
दूध दालान में रखकर वह भगवान के दर्शन करने मंदिर गई।
फलाहार की रखवाली का भार अपने नाती सूर्यनारायणमूर्ति और
उसकी बहन गौरी को सौंप गई।

सूर्यनारायणमूर्ति 'राम' शब्द रटने की धुन में मस्त था। कुछ देर
में, गौरी—जो भाई के कर्तव्य को भी अपने ही काम के साथ निभा
रही थी—दालान में सो गई।

अंदर थाली के लुढ़कने की आवाज़ सुनकर, 'सूरी' चौंक पड़ा
और भीतर दौड़ा। बिल्ली गायब हो गई। कटोरे में दूध कम हो गया
था। बुढ़िया आयेगी तो नाक में दम कर देगी—इसी डर से उसने
थाली में कटोरे को फिर ढक देना चाहा। थाली उसने हाथ में ली
ही थी कि इतने में नानी आ धमकी। एक ही क्षण में बात खुल गई।
बुढ़िया के तरकस में जितनी गालियाँ थीं, सब की सब वहीं सूरी पै

साथ बाहर निकल आई। उसके बाद 'सूरी' को दो थप्पड़ लगे और निद्रालु गौरी को चार। जब अपने को सँभालती और समेटती हुई गौरी उठी, तब छत पर 'म्याऊँ–म्याऊँ,' रोती हुई बिल्ली बैठी थी। गौरी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह उसी की हालत देखकर रो रही हो। उसने प्यार से पुकारा—मीनी!

उसी रोज से भाई-बहन मे मनमुटाव हो गया। सूरी की धारणा यह थी कि गौरी को रात के आठ ही बजे सो जाने का कोई अधिकार नहीं था, पढ़नेवाले को उसी के इच्छानुसार छोड़ देना स्त्री का धर्म है और इन सब बातों को भूलकर गफलत की नींद लेनेवाली गौरी, पति के घर जायगी तो वहाँ कभी अच्छा नाम हासिल नहीं कर सकती। गौरी ने सोचा—वह तो खुद देख रहा था कि मुझे नींद आ रही थी और आँखें अलसा रही थीं, मैंने उससे कहा भी तो था? चुटकी बजाते याद करने लायक सबक को वह निगोड़ा एक युग तक रटता रहे तो इसमें दोष किसका है? बिलकुल फिसड्डी और फूहड़ लड़का है। रसोई-घर मे ही दिया रखकर पढ़ता तो क्या हो जाता? ये सब बातें तो उसने की नहीं उलटे नानी को खरी-खोटी सुनाकर मुझे मार खिलाई। उसके मगज मे भूसा भरा है भूसा! कमीने को पढ़ाई आयेगी तो कैसे?

मीनी ने भी उस दिन से वहीं अपना अड्डा जमा लिया। स्वाद पाई हुई बिल्ली वहाँ से निकलेगी कैसे? बुढ़िया कहीं इधर-उधर जाती तो यहाँ घी गायब या दूध नदारद, भगवान् के भोग लगने के पहले ही बिल्ली रसोई को छू देती; सुतली को उलझा देती—इस तरह जितनी शरारतें बिल्ली को मालूम थीं, सब वह करने लगी।

एक दिन रसोई-घर में मीनी सो रही थी। नानी ने उसे नहीं देखा। 'यह पी ले रे, कॉफी'—कहकर वह पूजा के लिए फूल लाने बाग में चली गई। गरी अपनी दवात, नोटबुक वगैरह ठीक तरह से रखकर आ ही रहा था कि इतने में कॉफी का आधा हिस्सा बिल्ली चट कर गई। नानी से उसने इस बात की रिपोर्ट की तो उसने आशीर्वाद दिया—तुम्हें यह भी चाहिये, और और भी। गरी पर खून सवार हो गया। वह झट भीतर से गरमागरम उबलता हुआ पानी ले आया और बिल्ली पर उँडेल दिया। लबे स्वर में 'म्याऊँ-म्याऊँ' रोती रोती वह भाग गई।

गौरी यह सब अपनी आँखों देख रही थी। उसके हृदय में एक ऐसी ज्वाला भभक उठी मानो गरम पानी उसी की देह पर डाला गया हो। उस समय से मीनी पर गौरी के प्रेम और आदर की मात्रा और भी बढ़ती गई। बुढ़िया और गरी की आँख बचाकर, वह भात में घी मिलाकर पिछवाड़े लाती और मीनी को खिलाती। अपनी कॉफी में से कुछ बाकी रखकर, बरतन माँजने के बहाने कुएँ पर जाती और मीनी को कॉफी पिला आती। दोपहर को जब नानी सो जाती या पत्नीकरण करती, तब मीनी के साथ पिछवाड़े खेला करती।

चलते-चलते एक दिन सारा भंडा फूट गया। अब दोनों में लाज न रही। अब तो पाँचों उँगलियाँ घी में हो गईं। जब गौरी कॉफी पीती या भात और मिठाई खाती, तब खुले तौर पर मीनी उसके पास आकर चिल्लाती। गौरी वहीं ही साझाई से अपना कुछ भाग उसे दे देती। मीनी गौरी को प्रेम से पुचकारती।

'मिन्नी के बारे में बुढ़िया के विचार कुछ निराले ही थे। कितनी ही सावधानी से क्यों न रहे, बुढिया आखिर घर के किसी काम काज में मीनी से धोखा खा ही जाती थी। अलावा इसके, रोज सवेरे उठते-उठते बिल्ली का दर्शन! मीनी पर उसका क्रोध वैसा ही गुम था जैसे बोतल में बंद फासफरस। मीनी के अभाव में उसके बदले सोने की बिल्लियाँ बनवाकर दान देने लायक जायदाद बुढ़िया के पास थी कहाँ? इसी कारण बुढ़िया की सारी आतुरता का लक्ष्य गौरी ही बनी।

सूरी के विचार कुछ और ही थे। जिस दिन वह मीनी के कारण पिटा, उसी दिन से उसको किसी न किसी तरह खतम करने का उसका खयाल था। पर बीच में जो गौरी खड़ी है। एक और भी बात थी। सूरी को देखते ही मीनी भाग खड़ी होती और गौरी को देखते ही उससे मीठी बातें करती। मीनी का यह व्यवहार सूरी को बिलकुल अच्छा न लगता। उसे यही दुःख था, कि एक बिल्ली तक मेरी कोई परवाह नहीं करती। ये सब विचार सूरी को यही उपदेश दे रहे थे कि एक ही समय पर एक साथ गौरी और मीनी का गर्व चूर कर दे।

एक दिन सवेरे एक टूटी दीवार के पीछे मीनी पाँव फैलाकर आराम से लेटी हुई थी। सूरी ने उसको देख लिया और एक बडा-सा बोरा लाकर उसमें उसे लपेटकर हाथ में उठा लिया। बुढिया यह देखकर चिल्लाने लगी—अरे! बिल्ली की हत्या मत कर। प्रायश्चित्त करने के लिए पैसा भी नहीं है।

'कुछ नहीं करता, नानी। तुम डरो मत'—कहते हुए सूरी ने

दूसरे दिन सवेरा हुआ। बुढ़िया बिछौने पर से उठी तो पहले उसे मीनी के ही दर्शन हुए। उसने सर पीट लिया—राम राम! यह तो आफत फिर आ ही गई? लेकिन गोरी के ओठों पर हँसी थिरक रही थी। जब वह पिछवाड़े की ओर दाँत साफ करने गई तब चूल्हे की राख पर बिल्ली सिकुड़ी बैठी थी।

'अरी मीनी!' गोरी ने पुकारा।

'म्याऊँ, म्याऊँ' करती हुई बिल्ली उसके पास आई।

'अब मुझे छोड़कर नहीं जाओगी न? अरे हाँ तो तुम मानो तुम नानी की प्यारी, मेरी आँखों का पुतला हो!'

'म्याऊँ, म्याऊँ।'

'मुर्गा अगर देखेगा तो तुम्हें भागा हुआ चोर समझकर तुम्हारा खून कर डालेगा—क्या करूँ?'

'म्याऊँ, म्याऊँ।'

इस तरह गोरी और मीनी अपनी प्रेम-भाषा में बातचीत कर रही थीं कि इतने में मुर्गा भी वहाँ आ पहुँचा।

आँखें मटकाते हुए उसने कहा—क्यों री गोरी, मालूम होता है तुम्हारी बिल्ली जादू भी जानती है! पिंजड़े में से अपने-आप को छुड़ा कर भाग ही गई?

'चलो रे बंदर! ये सब बातें तुम्हें क्या मालूम?'—गोरी ने उसका जवाब झाड़ा।

मीनी यों खुश हो गई मानो कोई भैरव का डेरा नहीं हो।

मुर्गा इस अपमान को सह न सका। उसने मन ही मन यह ठा-

कर लिया कि अगर मैं तुझे यह न दिखाऊँ कि मैं गौरी का भाई हूँ तो मेरा नाम नहीं। लेकिन उसने कोई दुस्साहस का काम नहीं किया युक्ति से काम लिया।

उसने एक सुंदर मार्मिक भाषण दिया—देखो गौरी, नानी तुमको कितना चाहती है। गये जन्म में तुम उसकी बहन थी। इसीलिए तो वह तुम से तुतलाती है। तब मैं एक चूहा था। इसी से तुम दोनों को मुझ पर गुस्सा आता है। अच्छा, पुरानी बात को तो जाने ही दो। आगे से हम दोनों मेल-जोल से रहें, क्यों है न ठीक ?

गौरी तो बोदम थी ही। इस भाषण से उसका दिल पिघल गया। इस खुशी से कि अब भाई को अक्ल आ गई है, उसने अपनी मिठाई का एक हिस्सा भी उसे दिया।

दस बजते ही सूरी मदरसे चला गया और दोपहर को लौट आया। दोपहर के भोजन के बाद उसने एक मैला कागज निकालकर उस पर लिखा—

'मास्टर साहब को,

मेरा सिर बहुत बहुत दुख रहा है। नानी ने कह दिया है कि दोपहर के बाद मदरसे न जाना। मुझे सोंठ और कालीमिर्च का लेप लगाया गया है। मुझे छुट्टी चाहिये।

टी० सूर्यनारायणमूर्ति'

उसने पड़ोस के लड़के के द्वारा यह चिट्ठी भेज दी। नानी से उसने कहा—पेट में बड़ा दर्द हो रहा है, नानी। मैं पाठशाला नहीं जाऊँगा। वह चटाई बिछाकर उस पर दो-चार बार इधर-उधर करवटें

दूसरे दिन सवेरे उस समय, जब कि चिड़िया, मुर्गे और नन्हे-नन्हे बच्चे उठा करते हैं, दोनों उठे और झाड़ी में जा देखा। बिल्ली वहाँ दिखाई नहीं दी। उन्हें प्रसन्नता हुई कि वह और कहीं चली गई होगी।

सन्ध्या का समय था। हवा जोरों से चल रही थी। गां के पैशाचिक नृत्य कर रहे थे। नारियल की डालें और पेड़ों से गिरी हुई पत्तियाँ सड़कों पर इधर-उधर पड़ी थीं। सूखे पत्तों का बवंडर सा उठ रहा था। ईशानकोण में काले-काले बादलों की घटाएँ छाई हुई थीं, मानो समुद्र ही उमड़ा आ रहा हो। ओ हो! यह वर्षा का प्रारम्भ था!

मदरसे से जब गुरी लौट आया तब उसके मन में एक भय, एक संदेह था—हमने सवेरे अँधेरे में बिल्ली को शायद ठीक तरह से नहीं देखा। अगर बात यही हो तो दूसरे दिन भी मीनी पानी में भीग जायगी—इसी विचार से वह गौरी को भी साथ लेकर फिर गाँव गया।

मालूम हुआ कि सचमुच जिस चीज को पुरानी पत्रिका या सूखे पत्तों का ढेर समझकर उन्होंने उसकी परवाह नहीं की थी, वही मीनी थी। बच्चों का दिल पानी-पानी हो गया। जल्दी-जल्दी वे दोनों घर में गये और एक-एक कौर घी मिला हुआ भात लाकर मीनी के सामने रख दिया। बिना लालसा के ही उसने थोड़ा-सा खा लिया। कम से कम उस दिन वह पानी में न भीगे—यही सोचकर बच्चों ने मीनी को पकड़कर घर में लाना चाहा। दर्द से कराहती हुई, उसने दोनों के हाथों को चीर

ड़कर घायल कर दिया। गौरी एकटक यरी को देख रही थी। वह
झुकाकर, अपने पैर के अँगूठे से जमीन को कुरेद रहा था। पानी
ते ही दोनों बच्चे भीतर चले आये।

उस दिन से ऐसा पानी पड़ा कि आठों दिशाएँ पानी से एकदम भर
। जल-प्रलय था, घर से बाहर पैर निकालना मुश्किल था। तो भी
नों बच्चे रोज़ झाड़ी के पास जाकर मीनी को कुछ-न-कुछ खाना दे
ते थे। तीसरे दिन जब वे गये, तब मीनी काठ की तरह पड़ी थी।
ारे, दोनो बच्चे उसे देखकर फूट-फूटकर रोये। नानी ने उन्हें आश्वा
 तो दिया, लेकिन उससे एक कानी कौड़ी का भी फायदा न हुआ।

ख़त और आँसू

[कृष्णमूर्ति 'कल्की'

[श्री कृष्णमूर्ति 'कल्की' का जन्म १९०२ ईसवी में हुआ था।
'आधुनिक तमिल हास्य लेखकों में आप अग्रणी हैं। एक स
कहानी-लेखक के अतिरिक्त आप सफल निबंध-लेखक भी हैं।
नैतिक विषयों पर लिखे आपके व्यंगात्मक लेख अजोड़ होते हैं।
जनता द्वारा खूब पढ़े जाते हैं। आप उच्चकोटि के सम्पादक भी
आज तमिल-प्रान्त की साहित्यिक जाग्रति और वहाँ जनता में
पत्रिकाएँ पढ़ने की सुप्रवृत्ति का सारा श्रेय आपही को है। आ
तमिल-भाषा में जन साहित्य का स्रष्टा कहा जा सकता है। आ
चुनी कहानियों के दो-तीन संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। आज
आप मद्रास के सुप्रसिद्ध हास्य रस के पत्र 'आनन्द विकटन'
सम्पादक हैं।

'खून और आँसू' आपकी अन्य कहानियों से भिन्न; पर आप
शैली का एक सुन्दर उदाहरण है। उदात्त प्रेम की भावनाएँ किसी
जीवन को कितना सेवा-परायण और उच्च बना देती हैं, इसका मा
चित्रण प्रस्तुत कहानी है। पाठक को हठात् अचरज में डाल देन
गुण का इसमें प्राधान्य है। फिर भी यह जीवन के प्रति विचार
एक नई भावना को जन्म देती है। अपठित विधवाओं को यदि प्रेर
मिले, अनुकूल वातावरण मिले, तो वे भी एक उच्च जीवन जी सक
हैं। समाज और देश के लिए उपयोगी हो सकती हैं। — सं०]

खत और आँसू

(१)

सुप्रसिद्ध महिला-विद्यालय की संस्थापिका और प्रधान अध्यापिका, बहिन अन्नपूर्णा देवी, नियमानुसार एक दिन शाम को विद्यालय के उद्यान में टहल रही थी, जो विद्यालय को चारो तरफ से घेरे हुए था। विद्यालय से कुछ दूर के एक बँगले से शहनाई का स्वर सुनाई दे रहा था, जिससे उनको कई पुरानी बातो का स्मरण हो आता था। उनके

पक्ति उसमे थी। पद्मा ने पूछा—कवि यहाँ किस प्रेम का उल्लेख [illegible]
है? बड़ी नटखट लड़की है पद्मा! सुनिये, उसको हमीं खूब जा[illegible]

बाग की दूसरी ओर कुछ लड़कियाँ हाथ में गेंद खेल रही[illegible]
वहाँ से एक कहकहा उठा जिसकी गूँज दक्षिण पवन में लहराती
आ रही थी।

'पद्मा के प्रश्न का तुमने क्या उत्तर दिया?' अन्नपूर्णा ने पू[illegible]

'उत्तर देने में मैं बहुत हिचकिचाई। कवि यहाँ प्रेम में स्त्री
के प्यार को ही सूचित करते हैं। लेकिन यह बात मैं उन लड़कियों
सामने कैसे कहती? साधारण लड़कियों को समझाना भी कठिन
जब मैं 'क्वीन मेरीस' कॉलेज में पढ़ रही थी तब मेरा प्रे[illegible]
पर जो बीत रही थी वह मुझे खूब याद है। यहाँ तो सभी स्त्रियाँ [illegible]
वाएँ, या पति परित्यक्ताएँ हैं—इनके सामने मैं प्रेम के बारे में [illegible]
क्या?'

इस प्रकार सावित्री कहती जा रही थी कि बीच ही में रुक कर [illegible]
बोलना बन्द कर दिया। उसे झट यह बात याद आई कि [illegible]
अन्नपूर्णा भी बचपन में पति को खो चुकी है और उसके मन [illegible]
खटका कि उसने कुछ अनुचित ही कह दिया है। बात बदलने [illegible]
लिए उसने फिर कहा—सच पूछो तो, बहिनजी, यह सब बिल्कु[illegible]
पागलपन मालूम होता है। प्यार व्यार सब, बिल्कुल भ्रम ही है न
बेकार रसिया [illegible] मनोराज्य के सिवाय यह और कुछ नहीं

तब अन्नपूर्णा ने कहा—अच्छा, यह बात है? सब भ्रम है
बहुत ठीक, मैं डॉक्टर श्रीनिवासन को ऐसा ही लिख देती हूँ।

नहीं उगी थी। मैं सोचने लगी—और सब लड़कियों की तरह मैं भी बाल सँवारकर फूल क्यों नहीं रख सकती ? सिंदूर से माँग क्यों नहीं भर सकती ? चन्दन क्यों नहीं लगा सकती ?

'शादी के तीसरे दिन दोपहर को, मैं अबुजम् के साथ जनवासे गई। अबुजम् की ननद उसके बाल सँवार रही थी। उसके पास अब कौन-कौन-से गहने हैं, अब और कौन-कौन-से बनवाकर पहनानेवाले हैं—ऐसी अमूल्य बातों के बारे में वह पूछताछ कर रही थी। मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। 'हॉल' में कोई बातचीत कर रहे थे और बीच-बीच में कुछ शब्द सुन पडते थे। मुझे प्रतीत हुआ कि यह उन्हीं की आवाज़ है। मैं कान देकर ध्यान से सुनने लगी। उस आवाज में कैसा माधुर्य, कैसा अपनापन भरा था ? बचपन में विधवा होनेवाली स्त्रियों की हालत के बारे में ही वह बातें कर रहे थे। वैधव्य की कठोरताओं के बारे में कितने ही महान व्यक्तियों की सूक्तियाँ वे उद्धृत करते गये और पुस्तकों के नामों का भी उल्लेख किया। उन उद्धरणों में से, 'श्री माधवय्या की लिखी हुई मुत्तु मीनाक्षी शीर्षक कहानी पढ़िये', यह वचन तो मुझे अब तक याद है।

एक ने कहा—ठीक बोलते हो जी ; बातें बघारने में तो तुम पूरे उस्ताद हो ! तब अन्नपूर्णा के साथ ब्याह ही क्यों नहीं कर लेते ?

'उन्होंने जवाब दिया—छि-छि ! तुम लोग बिल्कुल मूर्ख हो। तुमसे बातचीत करने की अपेक्षा टूटी दीवार से बोलना बेहतर है। झट किसी के कमरे से बाहर जाने की आहट सुनाई दी।

'इतने में उनके बारे में सभी बातें मैं समधियाने की बातचीतों से

प्रेम ही मृत्यु है

कु० प० राजगोपालन्

प्रेम किया करता था। जो मैं उसे पढ़ने लगी, उसमें से आँखें और आँसुओं में डूब हो गये थे

'जीजी, यह आप क्या कह रही हैं? तब आपको..'

'हाँ, सावित्री! उस दिन मुझे अपमान और मन की व्यथा का जो अनुभव हुआ, उसीने मुझे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया और यहाँ तक बी० ए०, एम० डी० की पदवी लेने और इतनी सेवा करने का कारण बना। उन्होंने जब मेरा हाथ छूकर अपना रक्त दिया था, उस दिन मुझे पढ़ना नहीं आता था।'

सावित्री की आँखों में छलछलाती हुई आँसू की बूँदें, मानो चन्द्रमा के प्रकाश में मोतियों की तरह झलकने लगीं।

और वह शहनाईवाला बहादुरशाह राग ही गा रहा था या किसी के महाकाव्यों में भरे हुए सारे करुणरस को निचोड़कर शहनाई में नहीं — आग भर रहा था?

प्रेम ही मृत्यु है

कु० प० राजगोपालन्

[श्री कृ० प० राजगोपालन् का जन्म १९०२ ई० में हुआ था। आप अंग्रेज़ी के बी० ए० हैं और आपने बंगला भाषा और साहित्य का भी अच्छा अध्ययन किया है।

आधुनिक तामिल कहानी को पूर्ण रूप देनेवाले आप प्रथम गल्पकार हैं। आपकी सौन्दर्यानुभूति और सूक्ष्म भाव व्यञ्जना सुन्दर है। प्रेम को आपने अलग अलग दृष्टिकोणों से अच्छी तरह प्रदर्शित किया है। न केवल आप अच्छे कहानी-लेखक हैं, वरन् आप एक सफल समालोचक भी हैं और एक दो समालोचनात्मक पुस्तकें भी आपकी निकल चुकी हैं।

'प्रेम ही मृत्यु है' की रचना में एक विशेषता है। इस कहानी में एक स्त्री के मुख से ही उसके अपने हृदय का अध्ययन कराया गया है। यह बहुत नया है और सफल है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि स्त्री एक समस्या है हमारे पूर्वजों ने भी कहा है—स्त्रीणां च चित्तं—दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः? उसी स्त्री-हृदय का एक सफल चित्र लेखक ने अपनी इस कहानी में उपस्थित किया है। एक भोलीभाली नारी और सहनशील पति के साहचर्य से एक असाधारण घटना कैसे घटती है, प्रस्तुत कहानी में यह देखने लायक है।—सं०]

प्रेम ही मृत्यु है

एक प्रकार का भावना-प्रवाह, असाधारण अवसर पाकर, पंचेन्द्रियों को कैसे तितर-बितर कर सकता है, प्राणी की सुध-बुध कैसे गुम कर देता है और चलनेवाले शरीर को कैसे मुर्दा सा बना डालता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मेरी सहेली रुक्मिणी है। वह बहुत पढ़ी-लिखी न थी। गँवार लड़की थी। हिन्दू स्त्री-धर्म के अनुसार 'लौंडी' होकर अपना जीवन बिता रही थी।.. तीन साल हो गये। उस दिन से उसको चित्त-विभ्रम-सा

हो गया है। उसके रोग ने वैद्यों को चकित कर दिया है। वह न तो 'हिस्टीरिया' कहलानेवाला स्नायुरोग है और न उन्माद ही। आँखें निर्जीव-सी, एक ही ओर देखती हुई पथराई-सी रह जाती हैं। वह हमेशा भावहीन आकृति-सी दीखती है। यह तो उसकी साधारण हालत है। एक दिन अपनी जगह पर बैठी बैठी वह चिल्ला उठी—अरी, तुम कहती थी कि माधो कहीं भेज दिया गया है! उधर वही तो जा रहा है? उसके भ्रम को मिटाना दूभर हो गया। एक दिन वह मेरा आँचल थाम कर अकारण ही सिसक-सिसककर रोने लगी। एक और दिन, 'अरी, माधो तो जीवित है। तब मैं माँग क्यों नहीं भर सकती?'—कहकर, उसने कुंकुम लगा लिया। पाँच मिनट बाद, वह आइने में अपना मुँह देख आई और 'हाय हाय! उनके मर जाने पर भी. क्या मेरी मति ऐसी भ्रष्ट हो गई।' कहकर कुंकुम को मिटा दिया।

× × ×

मेरी यात्रा समाप्त हुई। कुम्बकोणम में मुकाम करके लौटा ही था कि तीसरे दिन मेरी सहेली रुक्मिणी का पत्र मिला—

६-६—३६.

मेरी प्रिय कमलम्

इतने वर्षों के बाद भी तुम मेरी याद रखती हो और मेरा पता लगाकर यहाँ चली आई, यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मुझे तो ऐसा लगता है कि मैंने कोई ऐसी नई चीज देखी है जिसे इससे पहले कभी नहीं देखी थी। कमलम्, आठ साल पहले मैं और तुम नाचती-कूदती मदरसे जा रही थीं, घटना आज की-सी है। तुम तो

पढ़कर स्कूलों की 'इन्सपेक्ट्रेस' हो गई। मैं बेसमझ, कूपमण्डूक की तरह एक कोने में दिन बिता रही थी। लेकिन, सुनो कमलम्, मुझे नचाने के लिए यहाँ भी एक चीज़ आ धमकी। तुमसे कहने में क्या है? तुमसे न कहूँगी तो और किससे कहूँगी? कल का प्रभात। मेरे स्वामी घर पर नहीं थे। किसी 'केस' के लिए बाहर गाँव गये थे। घर का काम-काज पूरा कर, मैं कावेरी जाने के लिए द्वार पर गई। चौखट पर पैर रखा ही था कि वह सड़क पर जाता दीखा,—कौन था, जानती हो? मेरे ब्याह के दिन घर से जो भाग गया था—माधो—तुम्हें याद है? उसने मुझे शायद देखा भी न होगा। मेरे हाथ-पाँव काँपने लगे। पैर फिसलकर मैं गिर पड़ने को हुई पर अपने-आप को सँभाल लिया। इसी हलचल में उसने मुझे देख लिया। एक क्षण—वह तेजी से पाँच-छः फीट दूर तक चला गया। क्या जाने, कमलम्, मालूम होता है, वह मेरे दुर्भाग्य की घड़ी थी—मैं भूल गई कि मैं ब्याही हुई लड़की हूँ। मुझे याद नहीं कि मैंने क्या कहा। मैं अपने होश-हवास में नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने 'माधो' पुकारा होगा। चलनेवाला लौटकर मेरे पास फुर्ती से आया और पुकारा—रुक्मिणी! तभी मुझे अपनी चेतना हुई। मैंने उसके चेहरे को देखा। उसकी दृष्टि से मुझे डर लग रहा था। सारा शरीर थर-थर काँप उठा। भागती हुई आँगन में चली आई। कमलम्, वास्तव में मैं सोचने लगी कि, उसे क्यों बुलाया। मैं सच कहती हूँ, मैंने यह काम अपनी बुद्धि से नहीं किया। क्या करूँ, री?

'रुक्मिणी, मुझे चीन्हती हो?'—उसने पूछा। उसका वैरागी-भेष मुझसे देखा नहीं गया। 'ऐसा क्यों पूछते हो, माधो!'—मैंने कहा।

रुक्मिणी और मैं जब एक साथ मदरसे में पढ़ती थीं, तब माधो भी वहीं था। मुझे याद है, वह बड़ा अच्छा लड़का था। अफवाह थी कि उसी के साथ रुक्मिणी का विवाह होनेवाला है। हम सब लड़कियाँ रुक्मिणी की हँसी उड़ाया करती थीं। वह रुक्मिणी के पिता का भानजा था। उसके माता-पिता उसे बचपन में ही छोड़कर चल बसे थे। मामा के ही घर में उसका पालन-पोषण हुआ था। विवाह के वक्त रुक्मिणी की उम्र चौबीस वर्ष की थी। वह उससे तीन साल बड़ा था। कॉलेज में पढ़ रहा था। न जाने किस कारण से यह निश्चित हो गया कि रुक्मिणी का ब्याह माधो से नहीं होगा। लोग कहते थे कि इसका कारण उसकी माता ही थी। उसी के रिश्ते में एक लड़का वकालत पढ़ रहा था, उसी के साथ विवाह होना तय हुआ। रुक्मिणी ब्याह के रोज़, दिन-भर रोती ही रही। माधो उसी दिन घर से भाग गया। वह कहाँ गया, किसी को पता नहीं। हिन्दू-धर्म की प्रथा के अनुसार रुक्मिणी ने अपने पति को ही ईश्वर मान लिया। बस, अपने को उसकी लौंडी समझकर तन तोड़कर परिश्रम करती थी। उसके पति की बात, कुछ न पूछिये। अपनी पत्नी भी एक स्त्री है उसके भी मन, हृदय कुछ हैं—इस बात को शायद वह भूल गया था, या उसने इसकी परवाह ही न की। मैं भी स्त्री हूँ; इस-लिए बिना कहे मुझसे रहा नहीं जाता। कुंभकोणम् में रुक्मिणी से मैं मिली थी। बाप रे! क्या कहूँ, उसकी वह हालत मुझे बिल्कुल बुरी लगी। न जाने वह कैसे अपने दिन बिताती है। सचमुच वह देवी है।

भी पसद न करेंगे। मुझ पर सदेह करेंगे और पीटेंगे भी। हाँ, सखी! कितनी ही छोटी-छोटी बातों के लिए मुझे मार-पीट सहनी पड़ती है। एक बार की घटना है। 'भवति भिक्षा देहि'—कहता हुआ एक लड़का आया था। भोजन खिलाते वक्त मैंने उससे इतना ही पूछा था—तुम्हारा गाँव कौन-सा है? मैं आसमान को साक्षी करके कहती हूँ, मेरे मन में किसी भी तरह का कल्मष नहीं था। मैंने सीधे-सादे तौर पर ही यह प्रश्न किया था। लेकिन इसी बात पर वे क्रुद्ध हो गये और मुझे खूब पीटा। पगली की तरह ये सब बातें लिख रही हूँ। पतिदेव के बारे में ऐसा लिखना ठीक नहीं है? अब तक मैंने कुछ नहीं कहा था। ब्याही जाने के बाद, मुँह कैसे खोलती? मन से भी अगर कोई अपराध हो जाय तो वह पाप ही होगा न? मेरी नानी कहा करती थीं—पति का एक हाथ मारने के लिए होता है और एक आलिंगन के लिए। लेकिन मैं क्या जानूँ, दुनिया में कैसे होता है? मैंने तो मारनेवाला हाथ ही देखा है। ऐसी बातें लिखना दोष है, लेकिन यह कैसा मेरा विनाश-काल है?

तुम्हारी

रुक्मिणी'

इस खत को पढ़ने के बाद मेरी सहानुभूति और भी बढ़ी। रुक्मिणी-जैसी भोली-भाली बाला इस युग में कहीं मिल सकती है? बेचारी, कैसे-कैसे कष्ट भोग रही होगी? नन्ही बच्ची की तरह लिख रही है!

भी पसद न करेंगे। मुझ पर सदेह करेंगे और पीटेंगे भी। हाँ, सखी! कितनी ही छोटी-छोटी बातों के लिए मुझे मार-पीट सहनी पडती है। एक बार की घटना है। 'भवति भिक्षा देहि'—कहता हुआ एक लडका आया था। भोजन खिलाते वक्त मैने उससे इतना ही पूछा था—तुम्हारा गाँव कौन-सा है? मै आसमान को साक्षी करके कहती हूँ, मेरे मन मे किसी भी तरह का कल्मष नहीं था। मैने सीधे-सादे तौर पर ही यह प्रश्न किया था। लेकिन इसी बात पर वे क्रुद्ध हो गये और मुझे खूब पीटा। पगली की तरह ये सब बाते लिख रही हूँ। पतिदेव के बारे में ऐसा लिखना ठीक नहीं है? अब तक मैने कुछ नहीं कहा था। ब्याही जाने के बाद, मुँह कैसे खोलती? मन से भी अगर कोई अपराध हो जाय तो वह पाप ही होगा न? मेरी नानी कहा करती थीं—पति का एक हाथ मारने के लिए होता है और एक आलिगन के लिए। लेकिन मै क्या जानूँ, दुनिया मे कैसे होता है? मैने तो मारनेवाला हाथ ही देखा है। ऐसी बाते लिखना दोष है लेकिन यह कैसा मेरा विनाश-काल है?

तुम्हारी

रुक्मिणी'

इस खत को पढने के बाद मेरी सहानुभूति और भी बढी। रुक्मिणी-जैसी भोली-भाली बाला इस युग मे कहीं मिल सकती है? बेचारी, कैसे-कैसे कष्ट भोग रही होगी? नन्ही बच्ची की तरह लिख रही है!

'फिर तुमने मुझे बुलाया ही क्यों ? —क्रोध के साथ उसने पूछा। मैंने तुरन्त अपना क्रोध दबा लिया।

'बिना जाने ही मुझसे यह काम हो गया।'

'नहीं, रुक्मिणी ! तुम झूठ बोलती हो।'

मेरी समझ में नहीं आया कि क्या कहूँ। एक क्षण वैसे ही खड़ी रही। क्षण भर में घड़े को सँभालती हुई, तेजी से आगे बढ़ी।

'रुक्मिणी, मैं कल तुम्हारे घर पर आऊँगा।'

'मेरे पीछे मत आओ'—कहकर मैं घर आ पहुँची। मुझे लगा कि वह आ जाय तो कितना अच्छा हो। लेकिन मैं काँप उठी—हाय ! अब वे आ जायँ तो ? माधो उजड्ड है। उनके घर में रहते वक्त वह आ जाता, तो मैं क्या करती ? मुझे तो कुछ भी नहीं सूझता।

तुम्हारी
रुक्मिणी'

इस पत्र को पढ़ते ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि रुक्मिणी पर कोई आफत आ ही पड़ेगी। ऐसे समयों पर चालाकी से काम लेने की शक्ति उसमें न थी। उसका पति ईर्ष्यालु और मूर्ख था। माधो भावावेग में अपने को भूल जानेवाला था। तब आपत्ति के बारे में पूछना ही क्या है !

उसी दिन शाम की गाड़ी से चलकर, मैं अपने पतिदेव के साथ कुम्भकोणम् आ पहुँची। करीब साढ़े आठ बजे सवेरे हम रुक्मिणी के घर के सामने जाकर उतरे। घर के द्वार पर बड़ी भीड़ लगी थी। मैं सहम गई। भीड़ को चीरते हुए हम दोनों जल्दी-जल्दी भीतर गये।

रुक्मिणी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर एक तरफ बैठी थी। माधो एक ओर खड़ा था। रुक्मिणी का पति जमीन पर खड़ा था। उसी समय थाने के दारोगा भी अन्दर चले आये।

'केस' चला। माधो ने अपने वक्तव्य में सारी बातें कह दीं—शाम को रुक्मिणी से मिलने माधो का आना, बातचीत के बीच उसके पति का आगमन, आगन्तुक पर सन्देह-दृष्टि तथा अपनी पत्नी पर आक्रमण, हत्या को रोकने के लिए उसकी छाती पर माधो का प्रहार और तुरन्त उसकी मृत्यु। रुक्मिणी 'केस' में किसी तरह साफ आई। अदालत में गवाही की पेटी पर चढ़ाते ही वह मूर्छित हो जाती थी। आखिर माधो को काला पानी की सजा हुई।

उस दिन विचलित हुआ था, रुक्मिणी का चित्त।

नक्षत्र-शिशु

बी० एस० रामय्या

नक्षत्र-शिशु

'बाबूजी, क्या तारों के भी बाबूजी होते हैं ?'

'हाँ, बच्ची !'

'उनका नाम क्या है, बाबूजी ?'

'ठाकुरजी !'

'ठाकुरजी ? वे भी आपके-जैसे ही होंगे, बाबूजी ? तारे बहुत सुंदर हैं, उनके बाबूजी भी बड़े ही सुंदर होंगे न ?'

यह सुनकर बच्ची रोहिणी कुछ न बोली· वह गंभीर चिन्तन में डूब गई। उसके अपरिपक्व मन में ठाकुरजी, उनके नक्षत्र-शिशुओं के सौंदर्य और मानव-मात्र के मंगलमय के बारे में कल्पना की तरंगें उठने लगीं और वह इन सब चीज़ों की जाँच करने के लिए घर के बाहर चली आई।

× × ×

बालिका रोहिणी अभी छः ही साल की है लेकिन उसका एक-एक वचन एक-एक रत्न है। उसकी बोली मोतियों और मूँगों का हार है। उसके सभी प्रश्न देवी लोक के प्रश्न हैं। उसके शिशु-मन में स्वर्गलोक के विचार उठते हैं।

श्रीमान् सोमसुन्दरम् बी० ए० के पदवीधर हैं, लेकिन फिर भी वे आज बच्चा रोहिणी के सवालों का जवाब नहीं दे सकते थे। उनके दिल में एक कसक हुआ करती—हाय! इस बच्चे के मन को भी मैं शान्त नहीं कर सका हूँ।' लेकिन रोहिणी को देखते ही—रोहिणी के बारे में सोचते ही—उनको वह गर्व होता, जो किसी बादशाह को भी नहीं हो सकता था।

× × ×

साँझ हो आई। बाला रोहिणी तभी नहाकर अपनी मा के किये हुए साज-शृंगार के साथ बाहर आई। घर के द्वार पर दोनों ओर बादाम के दो पेड़ थे। उन्हीं के बीच वह खड़ी हो गई। सूर्यास्त हो रहा था, आकाश-वीथी में शून्य और प्रकाश मौन-मुग्ध होकर हँस रहे थे। बालिका रोहिणी पश्चिम में होनेवाले इस इन्द्रजाल को

उसके कानों में नहीं पड़ी। लेकिन बालिका के आनंद ने उसके मन को बरबस ही उसकी ओर आकर्षित कर दिया। निस्सीम प्रेम से मा की आँखें बच्ची को यों देख रही थीं मानों उसे वैसे ही निगल लेना चाहती हो।

आकाश-प्रदेश में अँधेरा छा गया। अंधकार भी कितना सुन्दर है! उसमें भी कैसी माधुरी है। माता के स्निग्ध प्रेम-जैसी माधुरी! एक के बाद एक तारे उगते ही गये। बाप रे! कितने तारे हैं! बालिका रोहिणी उनको गिन न सकी। कितनी शीघ्रता से वे पैदा हो रहे थे! बच्ची का छोटा मन उस शीघ्रता के पीछे चल नहीं सका।

'चलो, बिटिया! भीतर चलो। अँधेरा हो गया है।'—मा ने बेटी को पुकारा।

'जरा देर ठहरो, मा। आसमान को देखो, कितना सुन्दर है!'—बच्ची ने मा को वहीं खड़ी हो जाने को कहा।

'हाँ, हाँ, बहुत सुन्दर है, मगर अँधेरा हो गया है न? अब यहाँ क्यों अकेली खड़ी रहोगी? चलो, अंदर आओ।—मा ने फिर पुकारा।

'मा!'

'हूँ!'

'आसमान अब कैसा है, कहूँ?'

'कहो तो!'

'ठीक तुम्हारे चेहरे की तरह—तुम मुझे चूमती हो न? तब मेरा मुख आसमान-जैसा ही रहता है।'

कलाकार का त्याग

जगन्नाथ अय्यर 'ज्योति'

कलाकार का त्याग

[१]

नारायण पिल्लै सत्तर साल का बूढा हो चला था। उसके चेहरे पर काल की लकीरें खिंची थीं। यौवन का टीला गल गया था, पुष्टि के चिह्न लुप्त हो चले थे और गाल पिचके हुए थे। फिर भी उसके हाथ का वह पुराना कौशल अभी तक पूर्ण रूप से चला नहीं गया था। मिट्टी से अपूर्व रूपों की सृष्टि करने की उसकी कला-शक्ति

कलाकार का त्याग

[१]

नारायण पिल्लै सत्तर साल का बूढ़ा हो चला था। उसके चेहरे पर काल की लकीरें खिंची थीं। यौवन का टीला गल गया था पुष्टि के चिह्न लुप्त हो चले थे और गाल पिचके हुए थे। फिर भी उसके हाथ का वह पुराना कौशल अभी तक पूर्ण रूप से चला नहीं गया था। मिट्टी से अपूर्व रूपों की सृष्टि करने की उसकी कला-शक्ति

ालों का मन है। उनका मन लुभाकर, उन्हें खिलौनों के खरीददार नाने में ही तो कलाकार का कर्तव्य निहित है।

कृष्ण तीस साल का हो गया था। अब उसके कलाकार बनने की ल्पना स्वप्न में भी संभव नहीं थी। बूढ़ा कलाकार इसी सोच-विचार में पड़ा था कि अब अपनी परम्परा समाप्त हो चली है।

× × ×

मुरुगन ने उस वृद्ध-मन को इस चिन्ता-समुद्र में डूबने से बचाया और उसमें विश्वास के अंकुर जमाये। वह बछड़े की तरह उछलता-कूदता आया। उसके हाथ की उँगलियाँ, वसन्त के मंद पवन में लहलहाते हुए नव-पल्लवों की भाँति फुरफुरा रही थीं। वह वृद्ध का शिष्य बना। 'मज़दूरी की ज़रूरत नहीं। सिर्फ खाना खिलाकर, काम सिखा देना काफ़ी है'—कहकर वह उसकी शरण में आया। उसके चेहरे पर फुर्ती झलक रही थी। नारायण पिल्लै ने उसे स्वीकार कर लिया। उस दिन से आज दस साल हो आये, वह बूढ़े कलाकार के साथ ही रहता है। दिनोंदिन उनका परस्पर प्रेम बढ़ रहा है। वृद्ध को विश्वास हुआ कि ईश्वर ने उसकी कला को जगत् में स्थायी बनाने का एक साधन अचानक ही उसे ला दिया है। मुरुगन बूढ़े को अपना पिता ही समझता था और उसे 'बाबूजी' ही पुकारता था। अब वह उस कुटुम्ब का एक अंग हो गया था।

कृष्ण के निष्कलंक मन में किंचित् कालिमा पैदा हुई। वह सोचने लगा—न जाने यह पाजी कहाँ से आया? पहले तो बोला कि मज़दूरी की भी ज़रूरत नहीं है, खाने भर को मिल जाने पर काम करूँगा

(२)

नोरात आ रही थी। नारायण पिल्ल के खिलौने खूब खप रहे । मुरुगन के खिलौने ज्यादा दाम में बिके। मद्रास से कुल पाँच सौ पए का आर्डर आया था। घर के सभी लोग खिलौने बनाने में व्यस्त । बूढ़ा भी खाँसता हुआ अपनी शक्ति-भर खिलौने बनाने लगा। हने की आवश्यकता नहीं कि मुरुगन ने भी खिलौने बनाये। यह हना कठिन है कि कृष्ण ने ज्यादा काम किया। हाँ, उसने काम या। उसने बूढ़े को भी घुड़कियाँ दीं।

कृष्ण खिलौनों को, पेटी में पैक कराकर स्टेशन ले गया और न्हें मद्रास भेज दिया। मुरुगन भी उसके साथ स्टेशन तक गया था। रुगन के कारण उस दिन कितना मुनाफा मिल रहा है, यह सोचकर ृष्ण का दिल कुछ ठंडा हुआ।

उसने मुरुगन से पूछा—भाई, तुम ब्याह नहीं करोगे ?

उसके मुँह से इतनी मीठी बात की आशा, मुरुगन ने कभी हीं की थी। मुरुगन को वह अमृत-वर्षा-सी लगी। उसके आनन्द का ारण, विवाह की बात छेड़ना नहीं, किन्तु अपने 'दादा' का अपूर्व मपूर्ण व्यवहार था।

'पिताजी भी अक्सर कहा करते हैं, किसी सुशील कन्या से विवाह राना चाहिये'—कृष्ण ने कहा।

मुरुगन के मन्दहास में लज्जा भी मिल गई।

स्टेशन से दोनों लौटे आ रहे थे। सन्ध्या का समय था। बाजार के रास्ते आ रहे थे। यकायक एक आवाज़ सुनाई

है।—कहकर वह रोने लगा। वात्सल्य की धारा बेरोकटोक फूट निकली। आनन्द और प्रेम भी उसी धारा में मिल गये। उसे क्या मालूम था कि उसके परिणाम-स्वरूप मुरुगन पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़नेवाला है?

कृष्ण पिशाच-ग्रस्त-सा हुआ। छाता ही उसका आयुध बना। 'पापी! चाडाल! चमार कुत्ते! मेरे कुल के कुठार! अपने को ऊँची जातवाला कहकर हमें फँसानेवाला द्रोही!'...उसकी ईर्ष्या, जाति-गर्व, अपमान आदि भावनाएँ एक साथ मिल गईं। मुँह से गालियों की बौछार होने लगी। मुरुगन को मारते-मारते छाता टूट गया। उसका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया। लोगों की भीड़ जमा हो गई।

लोग इस करुण नाटक की आलोचना कर रहे थे। मुरुगन को अधमरा छोड़कर कृष्ण, आवेश से भरा हुआ, घर की ओर दौड़ा। वह इतना आतुर था कि उस बूढ़े को—अपने पिता को—एक दम मार डालना चाहता था। उसी ने तो अपने घर में इस कमीने को आश्रय दिया था? इस पर उसका कितना वात्सल्य था। उसने अपने बेटे की भी परवाह नहीं की। यही चाहिये था उसको? खूब!—ईर्ष्याग्नि की ज्वाला से ऐसे ही विचार उठने लगे। मुरुगन की कला-कुशलता, उससे अपना लाभ—आदि वह सब कुछ भूल गया। उसका विचार था कि मुरुगन के महापाप में बूढ़ा भी शामिल है। 'आगे से बूढ़ा मुरुगन पर फिदा न होगा'—यह सोचकर कृष्ण को कुछ सान्त्वना मिली। मानो उसने अपने चिरकालीन शत्रु पर विजय पाई हो।

× × ×

भी मुरुगन के हृदय मे वह वृद्ध-मूर्ति अचल बनी रही। अपने हृदय-स्थित उस रूप को वह बाह्य-जगत् मे लाता तो कितना अच्छा होता!—इसके विचार-मात्र से उसके सिर से पैर तक एक अमृत-धारा बह गई! मुख पर एक अपूर्व आभा आलोकित हुई।

रात-भर वह नही सोया। वह बाबूजी की मूर्ति बनाने लगा। उसने स्वप्न मे भी उसको देखा। दूसरे दिन फिर बनाना शुरू किया। रत्ती-रत्ती-भर मिट्टी को बहुत-ही सावधानी से वह हाथ में ले रहा था। चार दिनो मे मिट्टी की मूर्ति तैयार हो गई। अब उसमे रग चढाने लगा। जूते बेचने से उसे कुछ पैसे मिल गये थे। साथ ही उसने कुछ पैसे अपने पिता से भी माँग लिये थे। बढिया रग खरीदा गया। मूर्ति के अणु-अणु मे रग भरा गया!

बस, अब कार्य की समाप्ति हुई। उसने आँख खोलकर देखा। चिल्लाया—अहा! सब तेरे ही अनुग्रह का फल है! उसका मन आनन्द से भर गया। वह पागल की भाँति बकने लगा—मेरी जीत हुई! बाबूजी आज सचमुच ही मेरे बाबूजी हो गये! शाबाश! वाह रे कौशल!

आनन्द के पर्वत से वह यकायक पाताल मे गिरा—हाय, दादा इसे छीन लेगे तो—?

'नहीं, इसे छिपा रखूँगा।'

रविवार को नियमानुसार कृष्ण अपने आदमी के साथ आया। आदमी अदर से दो मूर्तियाँ ले आया।

'बस, इतनी ही?'

डकर इसमें भर दिया है; यह उसकी कल्पना का रूप है, उसने अपने प्रेम को गलाकर उनसे इसे मढ दिया है। जिस जीव-युक्त शरीर की स्मृति मे यह मूर्ति बनाई गई थी, वह शरीर तो नष्ट हो गया, लेकिन यह नष्ट न होगी।

यही नहीं, यह उसके पिता का जीता-जागता चित्र था। इसके द्वारा उसने अपने पिता को देखा। प्रेम सभी प्रकार की रुकावटों को लाँघकर बाहर वह आया। उसकी आँखों मे आँसुओं की बूँदें निकली। ईर्ष्या और क्रोध उससे विदा हुए।

आधे घंटे तक वह निर्निमेष दृष्टि से उस मूर्ति को देखता रहा। उसके हृदय मे स्मृति की तरगे लहराने लगीं। कुछ सोचकर वह फिर लौटा। अकेला झोपडी के पास चला आया। उसके साथ वह आदमी नही था।

'भाई मुरुगा !'—लड़खड़ाती हुई आवाज़ कानों मे पडी।

मुरुगन आश्चर्य करता हुआ बाहर आया। दूसरी बार 'भाई' पुकारने पर ही उसे विश्वास हुआ कि कृष्ण ही उसे 'भाई' के नाम से पुकार रहा है।

'भाई, मुझे माफ न करोगे ?'

'यह क्या? स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं ? कृष्ण की ये बातें हैं ?'—उसने आँखें मलकर देखा।

आँसू बहाता हुआ, हाथ मे सुदर मूर्ति लिये, कृष्ण लडखडाते स्वर में कह रहा था—भाई, मैं बड़ा पापी हूँ। मुझे माफ़ करो।

'बात क्या है, दादा ? इसे क्यों लौटा लाये ?'

शिल्पी का नरक

वृद्धाचलम

ा हो गया ? मैने कल जो कहा था, वह आपके दिल मे बैठ गया
नहीं ? सब मूलशक्ति की लीला है, सब उसीके रूप हैं। कॉल्लि-
तिमा * भी वही है, कुमारदेव भी वही है। सब एक मे लीन हो
ये तो . ?'

'आपके तत्त्व-ज्ञान के मुकाबले मे अंगूरी का एक प्याला निहायत
दि होगा। अंगूर भी साइप्रेस द्वीप का हो. .उधर जो जा रहा है
ख़िर, उसे भी किसी स्वप्न पर अटल विश्वास है। अगर मैं आपके
ले सूत्र को मान लूँ तो आपकी पद्धति मे कोई कसर न रहेगी।...
किन उसे मैं मानूँ कैसे ? प्रत्येक मनुष्य की मनोभ्रान्ति के अनुसार
नका तत्त्व होता है...जाने दीजिये इन बातो को.. प्रभात-हाट
 Morning Bazar) मे घूमनेवाली आपकी कर्नाटकी सुन्दर
ौर एक प्याला-भर मधु बस है मेरे लिए...'

'शिव ! शिव ! आपसे तो ये जैन-पिशाच ही अच्छे हैं उन्मत्त
ापालिक भी अच्छे हैं.. इस मूढता की गठरी को यूनान से यहाँ लाद
ाने की क्या जरूरत थी ?...'

'आप-जैसे लोग जहाँ रहते हैं, वहीं मैं भी रहूँ, इसी मे सार्थकता
। हमारे जूपिटर की मूर्खता और आपके स्कन्द की मूर्खता—दोनो मे
ोई तारतम्य नहीं है...' यह कहकर फैलार्कस हँस पड़ा।

---

* कॉल्लि-प्रतिमा—केरल प्रान्त की एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा।
हा जाता है कि, उसकी सुदर मुसकान को देखने मात्र से पूर्वकाल मे
ाज-सेनाएँ निश्चेष्ट होकर मर जाती थीं।

'यह क्या ! तुम भी ?'— फैलार्कस बोला ।

'फेलार्कस, तुम्हारे निरीश्वरवादी होने पर मुझे खेद नहीं। है किन श्रौरों का उपहास मत करो...'

'अरे यार, इसी के लिए तो मै पैदा हुआ हूं यही तो मेरा ाम है.

'अच्छा. चलो , महात्माजी, पधारिये ।'

शिल्पी दोनो को बैल-गाडी मे ले चला। गाडी की गति बहुत ीमी ही हो सकती थी। सामने हाथी और भार ढोनेवाले गधे व बैल न्दरगाह की ओर चले आ रहे थ। लोग दीवट लिये हुए जा रहे थे ौर उनको पार करते हुए गाड़ी चलाना मुश्किल काम था। चानक किसी राज्याधिकारी का रथ आ जाता तो रथ और ाथियो से सडक भर जाती थी। डका बजाने पर भी कुछ फायदा ही। नमक से भरा छकड़ा चलानेवाली वह लडकी बाल-बाल बच ई। अगर ज़रा इधर हो जाती तो रथ के नीचे दब जाती। शिल्पी की ाडी भी उससे टकराती बची।

'विधाता का विधान !'—शिल्पी ने कहा।

किसी और बात को सोचता हुआ फेलार्कस बोला—तुम्हारी ृष्टि-शक्ति !

'फेलार्कस, तुम्हारी बातो से मेरे गौरव को शान्ति मिल ग । कितने दिनो तक मैने घोर परिश्रम किया था ! तुम्हे मालूम म तो कल के बच्चे हो...लास्य !...उसमे कितने अर्थ भरे प ुष्य की बात, ब्रेय सब चीजे...फेलार्कस, यह सारा

नये मंदिर से घर लौटते वक्त आधी रात बीत गई।

वृद्धावस्था ने उसी दिन उसे कुछ ढीला किया था। वह थककर लेटा और सो गया।

बाप रे! कैसी ज्योति है! अखण्ड, सीमा-रहित प्रदेश! उसमें शिल्पी का लक्ष्य, अर्थ-हीन लेकिन अर्थ-पुष्टि से भरा हुआ वह अप्रतिम मन्दहास! कोमल हृदय-ताल में नर्तन! कैसी चेतनता! कैसी सृष्टि!

यकायक सब ओर अँधेरा छा गया! एक ही गाढान्धकार, हृदय की शून्यता की तरह खाली अन्धकार!...

फिर प्रकाश! अब स्वर्ण-निर्मित मंदिर! आँखों को चौंधिया देने-वाला प्रकाश!.. दरवाजे घंटियों की आवाज़ के साथ अपने-आप खुलते हैं. भीतर वही पुराना अन्धकार!

शिल्पी भीतर जाता है। वह स्थान मानो अन्धकार का गर्भ है। वहाँ दीप की मंद ज्योति दीखती है! यह क्या! पुरानी शिला! जीव नहीं! आकर्षक मन्दहास नहीं!...सब अन्धकार.. अन्धकार!

अन्धकार के द्वार पर छाया की तरह आकृतियाँ झुकती हुई आती हैं। झुकती हुई प्रणाम करती हैं।

'मुझे मोक्ष! मुझे मोक्ष!'—यही प्रतिध्वनि करोडों के उस छाया-लोक में सुनाई दे रही थी। शिला की ओर किसी ने आँख उठाकर भी नहीं देखा! इसी तरह!..

दिन, वर्ष, सदियाँ लहरों की तरह लुढकती जाती हैं—उन अनन्त करोड़ों वर्षों में एक भी छाया आँख उठाकर नहीं देखती!—

'मुझे मोक्ष...!'—यही टेक, गीत, सब कुछ।

कन्या-कुमारी

कन्या-कुमारी

कुमार स्वामी

कन्या-कुमारी

कन्या-कुमारी—वह जगह, जहाँ तीन समुद्र-राज एक साथ मिलकर बड़ी आवभगत के साथ भारत-देवी के पाद-पद्मों को छूते हैं। मैं एक चट्टान पर लेटा हुआ, चारो ओर घिरे हुए माया-दृश्य में लीन था। समुद्र में डूबकर सिर्फ सिर को बाहर दिखानेवाले गोल-गोल प्रस्तर-खण्डों पर उछलकर गिरती हुई तरंगें दूध की तरह बह रही थीं। पानी में तैरता हुआ सफेद जल-पक्षियों का समूह, समुद्र की नीलिमा में

सौंदर्य-शास्त्री रहे होंगे। शहर के सारे घर लकड़ी के बने हुए थे। राजा का महल गूगुल की लकड़ी से बना हुआ था। उसका सौरभ बहुत दूर तक फैल गया था। ऊँची श्रेणी के चित्रों से राजा का अन्त:पुर सजाया गया था। सन्ध्या समय, उपवनों में, चित्र-मण्डपों में और नदी-तट पर तमिल-रम्भाओं का मानवों से प्रेम करने का स्वर्गीय दृश्य दिखाई देता। जब विदेशी रम्भाएँ तितलियों की तरह राज-मार्गों में झूमती जातीं, तब ऐसी सुगन्ध फैल जाती मानो वे स्वर्ग-लोक से आ रही हैं। अपने फूल-जैसे चेहरों को घूँघट में छिपाकर क्लेश पानेवाली आर्यदेशीय ललनाओं के विरुद्ध, तमिल युवतियाँ निर्भीक और स्वतन्त्र होकर जीवन के सभी पहलुओं में पुरुषों से समता रखती थीं, जिससे देखनेवाले आश्चर्य में डूब जाते थे। उस जमाने के तमिल-लोगों की ज्ञानोन्नति का वर्णन करना असंभव है। संगीत में भाव और शिल्प-कला में प्राण की सृष्टि करनेवाले ये ही तमिल-पूर्वज थे।

उस युग के तमिल राजा किसी के आगे सिर झुकाना जानते ही नहीं थे और वे लेमूरिया (पापी समुद्र इसे निगल गया) आदि भू-खण्डों के चक्रवर्ती थे। उस जमाने के तमिल-लोग बड़े ही साहसी थे। वे महासागर की उत्ताल तरंगों को लाँघकर, अपने भुज-बल और मनोशक्ति से विदेशों में भी तमिल सभ्यता और व्यापार को फैला आये। राजा और प्रजा ने एक साथ मिलकर देश को ऐश्वर्य का केन्द्र बना दिया था। उस समय एक कीर्ति-धवलित राजा तमिल-देश का पालन कर रहा था। उसका नाम हमें मालूम नहीं। उसकी इकलौती बेटी थी, जिसका जन्म होते ही राज-महिषी ने सदा के लिए आँखें

सौंदर्य-ज्ञानी रहे होंगे। शहर के सारे घर लकड़ी के बने हुए थे। राजा का महल गुगुल की लकडी से बना हुआ था। उसका सौरभ बहुत दूर तक फैल गया था। ऊँची श्रेणी के चित्रों से राजा का अन्तःपुर सजाया गया था। सन्ध्या-समय, उपवनों में, चित्र-मण्डपों में और नदी-तट पर तमिल-रम्भाओं का मानवों से प्रेम करने का स्वर्गीय दृश्य दिखाई देता। जब विदेशी रम्भाएँ तितलियों की तरह राज-मार्गों में झूमती जातीं, तब ऐसी सुगन्ध फैल जाती मानों वे स्वर्ग-लोक से आ रही हैं। अपने फूल-जैसे चेहरों को घूँघट में छिपाकर क्लेश पानेवाली आर्यदेशीय ललनाओं के विरुद्ध, तमिल युवतियाँ निर्भीक और स्वतन्त्र होकर जीवन के सभी पहलुओं में पुरुषों से समता रखती थीं, जिससे देखनेवाले आश्चर्य में डूब जाते थे। उस जमाने के तमिल-लोगों की ज्ञानोन्नति का वर्णन करना असंभव है। संगीत में भाव और शिल्प-कला में प्राण की सृष्टि करनेवाले ये ही तमिल-पूर्वज थे।

उस युग के तमिल राजा किसी के आगे सिर झुकाना जानते ही नहीं थे और वे लेमूरिया (पापी समुद्र इसे निगल गया) आदि भू-खण्डों के चक्रवर्ती थे। उस जमाने के तमिल-लोग बडे ही साहसी थे। वे महासागर की उत्ताल तरंगों को लाँघकर, अपने भुज-बल और मनोशक्ति से विदेशों में भी तमिल सभ्यता और व्यापार को फैला आये। राजा और प्रजा ने एक साथ मिलकर देश को ऐश्वर्य का केन्द्र बना दिया था। उस समय एक कीर्ति-धवलित राजा तमिल-देश का पालन कर रहा था। उसका नाम हमें मालूम नहीं। उसकी इकलौती बेटी थी, जिसका जन्म होते ही राज-महिषी ने सदा के लिए आँखें

इस बात से लोगों में भी अशान्ति फैलने लगी। उन्होंने सोचा हम अभी इस तमिल-राज्य में स्वतन्त्र होकर आनन्द से जीवन बिता रहे हैं। युद्ध होने पर शायद यह तमिल-राज्य दूसरों के अधीन हो जाय और हम लोगों को गुलाम होकर रहना पड़े तो... ? न जाने क्यों यह राजा अपनी अक्ल खोकर लड़की के ही रास्ते पर चल रहा है ?

एक दिन सभी प्रजा-गण राजा की सभा में गये और अपने विचारों को उसके सामने रखा। उन दिनों प्रजा की सत्ता अधिक थी। राजा उनके विरुद्ध नहीं चल सकता था।

राजा ने तुरन्त अपनी बेटी को बुला भेजा। राजकुमारी उद्यान में सहेलियों के साथ गेंद खेल रही थी। उसने कह भेजा—मैं अभी नहीं आ सकूँगी। राजा को बड़ा गुस्सा आया। वह खुद उद्यान में गया और सखियों के साथ खेलती हुई अपनी लाड़ली बेटी से बड़ी रुखाई के साथ कहा—कुमारी, तुमसे विवाह करने के लिए जो भी राजकुमार आते हैं, उनको इस प्रकार दुत्कार देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुम इसी धैर्य से कि मैं तुम्हारे प्रतिकूल कोई काम नहीं करूँगा, मनमाने काम कर रही हो। इन सभी राजकुमारों में से क्या कोई एक भी तुम्हें पसद नहीं आया ? विदेश के सभी राजा लोग अब मेरे वैरी हो चले हैं और मुझे नीचा दिखाने के लिए कमर कसे हुए हैं। मेरी प्रजा भी उनसे भीत होकर मेरी निंदा कर रही है। 'जीवन्मृत' कहकर तुम्हारा उपहास कर रही है। हमारे कुल-देवता भी तुम्हारी इस अनीति को नहीं सह सकते। अगर वरुण देव हम पर

कर चंदन-मंजूषा से महादेव के निर्मल स्फटिक लिंग को उठाकर आँखों से लगा लिया। वह गद्गद् होकर प्रार्थना करने लगी—हे ईश्वर, मैं तुम्हारे अतिरिक्त और किसी को स्वीकार न करूँगी। हे शंकर, मुझे इस आपत्ति से छूटने का कोई रास्ता बता दो।

उस दिन से पाँच दिन तक वह अपने कमरे से बाहर आई ही नहीं। वह भूख-प्यास सब भूल गई। शिवजी के ध्यान में मग्न, वह पुष्प-कन्या ईश्वर के किसी संकेत की प्रतीक्षा कर रही थी। सहेलियाँ डर के मारे उसे बुलाने नहीं आईं। किवाड़ों के दराज से निकलता हुआ धूप-गन्ध उसके जीवित होने का द्योतक था।

छठवें दिन, एक अश्रुतपूर्व प्रसन्नता में कुमारी का मुख खिल उठा। कमरे से बाहर निकलते वक्त उसके म्लान वदन में झलकते हुए दिव्य तेज को देखकर सहेलियों ने अनुमान किया कि उसको शिवजी का प्रसाद मिल गया है। फुलवाड़ी में छः दिनों से सूखी हुई पुष्प-कलियाँ उसको बाहर निकलते देख, आनन्द-विभोर होकर खिल गईं और उनका गंध पवन में फैलने लगा। मोर पंखों को फैलाकर उसके हाथ के दानों को चुगने के लिए दौड़े हुए आये। राज-प्रासाद फिर एक बार सजीव हो उठा। तब कुमारी ने शिवजी पर फूल चढ़ाकर अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए संकेत माँगा, तब शिव-लिंग के मस्तक से एक नीला फूल नीचे गिरा। 'लेकिन नीला रंग किस चीज का द्योतक है? हलाहल भी तो नील है? लेकिन नीलकंठ के दिये हुए निर्माल्य की परीक्षा करना पाप होगा। इससे भलाई ही होगी।'—यह सोचकर कन्याकुमारी का मन कुछ शान्त हुआ। लेकिन उस नील पुष्प का ध्यान उसके हृदय के

राजमहल के सामने जाकर खड़ा हो गया, तब राजा आगे आ मंगलोपचारों से आर्यराज का स्वागतकर उसे महल के अंदर ले गया। आर्यकुमार का परिवार स्वर्ण-पुरी तमिल-शहर के वैभव को देखकर दंग रह गया।

आर्यकुमार के शृंगार-मंडप में बैठते ही, अप्सराओं को भी मात करनेवाली नटियों का मनोहर नाच और गान शुरू हो गया। मागध-वृन्द वीणा में, बिना संस्कृत मिले, शुद्ध तमिल गीत गाने लगे जिसे सुनकर लोग नहीं अघाते थे। तमिल-मल्ल अपने लोहे-जैसे बदन की ताकत दिखा रहे थे, जिसे देखकर लोग विस्मय-चकित हो रहे थे। सामन्त-राज, अमूल्य उपहारों को लिये हुए नंगे सिर खड़े थे। आर्य-पुत्र ने भी प्रसन्न-चित्त होकर उन्हें ले लिया लेकिन उसका मन और कहीं लीन था। अन्तःपुर से नूपुरों की झंकार सुनाई देती थी। झरोखों से हजारों कमल-नेत्र इन कौतुकों को देख रहे थे।

'उनमें से लज्जा से आँख चुरानेवाली वह तरुणी कौन है? वह कन्या-कुमारी तो नहीं है? छिः, यह बात कभी नहीं हो सकती। जिसने अपना चित्त महादेवजी को अर्पण कर दिया है, वह दूसरे मानव की ओर क्यों नजर उठाकर देखेगी? यह असंभव बात है। यद्यपि कन्या-कुमारी का बाह्य आचरण पुष्प के समान कोमल होगा, तो भी उसका अंतरंग तो वज्र के समान कठिन ही रहेगा।'—आर्यपुत्र तमिलों की टीम-टीमों से ऊब उठा। उसका मन किसी दूसरी चीज को खोज रहा था। आर्यपुत्र की यह कैसी प्रवृत्ति है?

दूसरे दिन कन्या-कुमारी मंगल-स्नान कर अपने को शिवजी के

राजकुमारी ने मुसकुराते हुए पूछा—एक ही रात मे, मेरे महल के सामने दीखनेवाले मैदान मे, हरएक देवता के रहने योग्य अपूर्व शिल्पवाले एक हज़ार मदिर आप बना सकते हैं ?

आर्यकुमार के भाल पर चिन्ता की रेखाएँ दौड गई। कुछ देर तक उसकी आँखें ध्यान मे मग्न रहीं। सभी लोगों ने सोचा कि यह असभव कार्य है : लेकिन उस जगन्नियन्ता के विधान को कौन जान सकता है ? जब उस दिव्य-रूपधारी आर्य ने सिर हिला दिया तब कुमारी का दिल धडक उठा और सब लोग आश्चर्य-चकित रह गये। उसने दृढता के साथ गम्भीर स्वर मे कहा—कुमारी ! जैसा तुमने कहा है, उस विशाल मैदान मे, कल बाल-सूर्य की किरणों मे चमकनेवाले एक हज़ार तुग गोपुरो को तुम देख सकोगी।

इस वाक्य ने लोगो के मन मे एक शका पैदा कर दी। राजकुमारी आर्यपुत्र को नमस्कार कर अपने कमरे मे लौट आई और दिल मे अनेको आशकाओ के साथ फूलो के बिछौने पर पडी रही।

'शायद वह इस काम को पूरा कर दे ? शिवजी का फैसला भी यही हो तब ? यह नील पुष्प मेरे जीवन का विष तो नहीं होगा ?...' फिर दूसरी विचार-धारा बहती—इस कार्य को मनुष्य नहीं कर सकता . अगर कोई कर सकता है तो वह यथार्थ मे परमेश्वर ही है।

इतना सोचने पर भी उसका मन चचल होकर झूल रहा था। वह रातभर रुद्राक्ष-मालाओं को फिराती हुई, शिव-नाम का स्मरण कर यही जपती थी—हे शिव, यह काम न हो। उसी क्षण उसकी बाँई आँख फड़कने लगी। 'न जाने यह अच्छा शकुन है या मेरी इच्छा के प्रति

...शले दुःखों को वह प्रकट न कर सकी। कैसा कठोर है शिव का ...वह शाप! पुरानी तमिल-दुनिया को समुद्र निगल गया था, इस बात ...की साक्षी होकर ईश्वरी खड़ी है।

× × ×

कल्पना की चिड़िया कल्पना लोक को उड़ गई। मुझे फिर अपनी ...द आई। सामने वही समुद्र था। पीछे देखा तो, ईश्वरी कन्या-...मारी अब तक शिवजी के दर्शन के लिए तप कर रही है। न जाने ...उस पर शिवजी की कृपा-दृष्टि पड़ेगी?

वाले दु:खों को वह प्रकट न कर सकी। कैसा कठोर है शिव का वह शाप! पुरानी तमिल-दुनिया को समुद्र निगल गया था, इस बात की साक्षी होकर ईश्वरी खड़ी है!

× × ×

कल्पना की चिड़िया कल्पना-लोक को उड़ गई। मुझे फिर अपनी याद आई। सामने वही समुद्र था। पीछे देखा तो, ईश्वरी कन्या-कुमारी अब तक शिवजी के दर्शन के लिए तप कर रही है। न जाने कब उस पर शिवजी की कृपा-दृष्टि पड़ेगी?
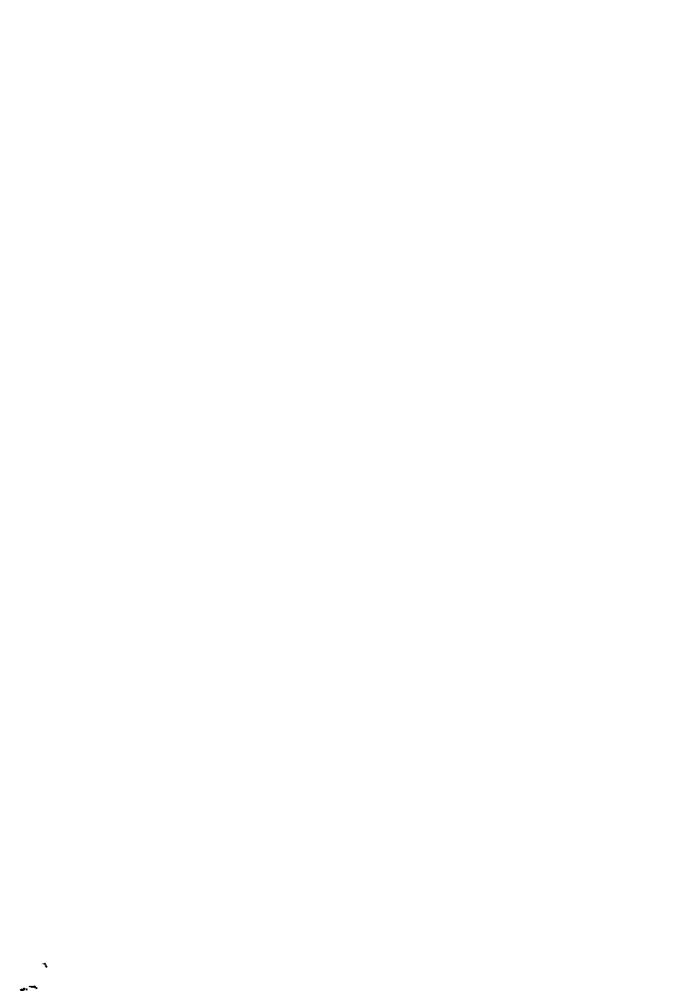
मुसकाती मूरत

चिदंबर सुब्रह्मण्यन

[श्रीचिदंबर सुब्रह्मण्यन् का जन्म १९१७ ई० में हुआ था। कहानी की कला और परिभाषा का आपने गम्भीर अध्ययन किया है। इस विषय पर आपके विचार भी मननीय हैं। आपकी कहानियों में वर्णन, भाव और कल्पना—प्रत्येक को अपना अपना विशिष्ट स्थान मिलता है भाषा काव्यमय और लालित्य-पूर्ण होती है।

'मुसकाती मूरत' संकेतवाद की एक उत्कृष्ट रचना है। कला की अमरता और कलाकार की तन्मयता का विशद वर्णन है। कहानी बहुत ऊँची उठी है।—सं०]

मुसकाती मूरत

'मुओ का कालेज' देखने गया था। पढे-लिखो के 'म्यूज़ियम' नाम की अपेक्षा गँवारों का 'मुओ का कालेज' नाम मुझे बहुत ही ठीक लगता है।

रुई और फूस से भरे शरीर और स्फटिक की आँखोंवाले हरिण, मोर, बाघ, बकरे, शेर—सभी तरह के जानवर बगैर हिले-डुले खड़े हैं। उन निर्जीव जानवरो की निष्प्रभ आँखो मे मृत्यु की प्रभा झिलमिला

रही है। उनकी निस्तब्धता में काल के शखनाद की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है। ये प्रेत-गण यम की शक्ति और कीर्ति को अपने मौन-स्वर मे गुनगुना रहे हैं।

मेरी विचार-शक्ति उत्तेजित हुई। दुनिया ही 'मुओं का कालेज' है। सजीव प्राणी भी इन जानवरों के सदृश ही हैं। मुर्दों के बारे में कहने क्यों जाऊँ? यह जगत् ही श्मशान है। हमारे पूर्वजों की ठठ-रियों पर आज हम सचार कर रहे हैं। मृतकों की भस्म मे, मास को पचानेवाली मिट्टी मे पैदा हुए अन्न को खाकर मेरा शरीर पुष्ट हो रहा है। मुझे पैदा करनेवाले मेरा आहार बनते हैं। लेकिन . फिर वही कहानी है। आज मेरी छाती पर खेलनेवाला, स्वय आनदित होकर मुझे भी आनद देनेवाला मेरा पुत्र कल मेरे वक्षस्थल के अस्थि-पजर पर गतोत्साह होकर रेंगता रहेगा। यही जीवन का दारुण सत्य है मृत्युराज के द्वारा दिखाया जानेवाला प्रत्यक्ष प्रदर्शन है।

सौ फुट लबा तिमिगिल लोहे की जजीर से लटक रहा है। जब जीता रहा, तब इसने कितने जहाजों को डुबो दिया होगा? बीस फुट ऊँचा मस्त हाथी पेड़ पर कीलों से लगाया हुआ खड़ा है। सजीव रहते वक्त इसको कौन बाँध सकता था? इसको बाँधने के लिए यम-पाश की ज़रूरत थी। जीवन के मधुर वर्ण-वैचित्र्यों को दिखाकर, आनन्द-नृत्य करनेवाला मोर, प्रेत-चिन्ह दिखाता हुआ मृत्यु नर्तन कर रहा है। 'प्रेम, प्रेम' का काव्य कूकनेवाला कोकिल 'मृत्यु, मृत्यु' की भावना में कॉटे-सा सूख गया है। मृत्यु, मृत्यु! ऐसी कोई जगह है, जहाँ वह नहीं? सर्वत्र उसी का श्वास है! सर्वत्र उसी की गन्ध!

हाय, भगवन ! भगवान ? मृत्यु ही प्रत्यक्ष भगवान् है। वही सर्वव्यापी है।

'छि छि ! जीवन को निगलनेवाले इस राक्षस से बचने का क्या कोई उपाय नहीं है ? बस , बस है इन पिशाचों का मुख-दर्शन ! इस श्मशान मे अब एक क्षण भी रहा नहीं जाता'—मैं हुकार करता हुआ वहाँ से दौड़ा। पैर से कोई चीज टकरा गई। शायद यम से तो नहीं टकरा गया ? मैं काँप उठा। अच्छा हुआ, वह थी बुद्ध की प्रतिमा। मुझे भान हुआ कि मैं शिल्पशाला में हूँ। प्रतिमाएँ श्रेणी-बद्ध रखी गई थीं।

मरे चमगीदड़ और निर्जीव उल्लू को देखकर भयभीत हो मैं यहाँ भाग आया। बुद्ध की शान्ति-मुद्रा से मेरा मन शान्त हुआ। आश्चर्य-युक्त भक्ति, श्रद्धा, मन की पवित्रता और उत्सुकता के साथ मैं वहाँ की सब मूर्तियों को देखता आ रहा था। देव, चैतन्य, बुद्ध, त्रिमूर्ति, देवियाँ, नटराज की मूर्ति, सुब्रह्मण्य आदि कई मूर्तियों को मैं ध्यान से देखता आया। यहाँ भी निस्तब्धता छाई हुई थी। लेकिन यह थी अमरत्व की शान्ति , काल-पाश से निर्लिप्त पाषाण-मूर्तियों की गर्व-भरी सगीत-ध्वनि।

हजारों वर्षों के प्रयत्न, हजारों कलाकारों के स्वप्न—इन प्रस्तरों में विकसित हुए हैं। जीवन की सूक्ष्मता को इन प्रस्तरों मे न देखना सभव नहीं था। नश्वर मनुष्य के अमरता पाने के प्रयत्नों के सघर्ष मे इन मूर्तियों का जन्म हुआ है। मूर्ति के हरएक घुमाव मे वह सघर्ष ध्वनित होता है। सौन्दर्य के उपासकों के लिए नाश नाम की कोई चीज होती ही नहीं।

आश्चर्य करता हुआ चला। हरएक मूर्ति में एक-एक नवीनता, एक एक तत्त्व प्रगट हो रहा था। कितनी कल्पनाएँ मेरे मन मे उठी। हृदय में एक अवर्णनीय आनन्द हुआ। एक कोने की ओर मुड़ा। उधर एक मूर्ति ने मुझे अपनी ओर बरबस खींचा, मानो मुझे रस्सी डालकर खींच रही हो।

लक्ष्मी के पास रखी हुई वह मूर्ति, लक्ष्मी के साथ पैदा हुए अमृत की भाँति अमर थी। वह एक दैवी शिशु की मूर्ति थी। सृष्टिकर्ता शिल्पी ने मानो अपने सारे प्रेम को उस पर उँडेल दिया हो। उसने छेनी से उसे छेदा ही नहीं होगा, उसे ज़ोर से दबाने में भी उसका मन दुखा और तड़पा होगा। हँसते हुए मुख की सृष्टि करने में उसे कैसी तपस्या करनी पड़ी होगी। गाल का वह गड्ढा एक लंबी कहानी सुना रहा है। उस मूरत की जन्म-कथा एक बड़ा भारी पुराण है। उसका प्रत्येक अवयव वही कहानी सुना रहा है। 'इस मूर्ति का विवरण जरूर पढ़ने लायक है। वर्णन-पत्र कहाँ है? वह है तो! ठीक, यह रसमयी कहानी पढूँगा।' मै पढ़ने लगा।

× × ×

कई दिन पहले की बात है। अमरनाथ नाम का एक शिल्पी था। वह महान् कलाकार, अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल विषयों को प्रस्तर पर दिखानेवाला था। ऐश्वर्य उसके पास असीम था। मनचाही सुन्दरी उसकी पत्नी थी। लेकिन उसे एक कसक थी। उसके बेटा नहीं था।

वह 'पुत्' नामक नरक की परवाह नहीं करता था। अन्य लोगों के बारे मे वह कभी नहीं सोचता था। इस लोक मे अपने नाम को

धारणकर उसे स्थायी बनानेवाला कोई जीव पैदा नहीं हुआ, यही उसकी चिन्ता थी। उसके नाम को, जब तक पृथ्वी स्थित है तब तक, पारंपरिक क्रम से स्थायी बना रखने के लिए एक बच्चे की ज़रूरत थी न? जिस निस्सीम शृंखला के संबन्ध को वह आरम्भ करना चाहता था क्या वह उसी के साथ टूट जायगी? वह नित्यत्व पाना चाहता था। वह चाहता था कि अपने शरीर की छाया भविष्य-भर में पड़ी रहे। लेकिन उसके मन की स्थिति को देखने पर यह भय होता था कि वह कम-से-कम अगली पीढ़ी तक भी झाँककर देखेगी या नहीं।

भगवान ने उसकी वह कमी भी पूरी कर दी। अपने को सभी रूपों में देखनेवाले उस कलाकार को देखने की इच्छा से मानो वे शिशु-रूप लेकर उसके पास खुद चले आये। उसके उस शिशु में कैसी दिव्य प्रभा थी! कलाकार के मन में उमड़नेवाली करुणा की नाईं, वह बच्चा बढ़ता चला जा रहा था। स्वयं कलाकार ने सर्वत्र खोजने पर भी अलभ्य तत्त्वों को उस बच्चे की मुसकान में पाया था। उन जटिल प्रश्नों के उत्तर, जो अब तक खुलते नहीं थे अब आसानी से खुल गये।

उस नये उत्साह में, नई मनोगति में, नये आवेश में उसने अपने महाकाव्य की रचना शुरू की। अब वह एक बच्चे का रूप बनाने लगा था। उसका मन अपने कीर्ति-कार्य को प्रस्तर के रूप में बनाने के लिए व्याकुल था।

हाथ, मन, हृदय, आत्मा—सभी काम में लग गये। अरुणोदय की तरह काले प्रस्तर में प्रभा का उदय होने लगा। निर्जीव अचेतन वस्तु में सजीवता का जन्म होने लगा। कलाकार अपने प्राण देकर

नये प्राणों का सृजन कर रहा है। इसलिए कोई ऐसी चीज नहीं, जिसमें वह प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता हो।

दोनो बच्चे उसकी प्रसन्नता से होड लगाते हुए बड रहे थे। मूर्ति में करीब-करीब सभी काम समाप्त हो गये थे। मुख पर हँसी लाने के लिए उसे कितना परिश्रम करना पड़ा। हँसते वक्त उत्पन्न होनेवाले गड्ढे का वह स्पर्श कर रहा था। बच्चा हँसता हुआ खेल रहा था। उसने बच्चे को गोद मे ले लिया। पितृ-सहज अभिमान के साथ उसने दोनो बच्चो को बारी-बारी से देखा। हृदय मे असीम आनन्द का आविर्भाव हुआ। सिर पर कुछ गर्व चढा। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' वाले जगत् मे उसके अपने अविनाश्य होने के प्रयत्न मे उद्भूत दोनो बच्चे एक दूसरे को देख रहे थे। उसके रक्त का स्वरूप, उसके मास-खण्ड का एक अश—वह बच्चा—उसी के हाथ मे सलग्न था। स्वप्न मे, कल्पना मे और आत्मा मे उगा हुआ ज्योतिर्मय बालक स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह खिल रहा था।

अमरनाथ का गर्व सीमा का उल्लघन कर गया। वह चिल्लाने लगा—मै मानव हूँ, लेकिन अमर हूँ। मेरा नाश नही होगा। मै मरने के लिए पैदा नहीं हुआ। मेरा रक्त इस बालक की कोमल तनु मे दौड रहा है। मेरी आत्मा का अणु-अणु इस पत्थर मे सुप्त है। मेरा मास इस शिशु के रूप मे परिणत हो गया है, अब वह नहीं मरेगा। मेरी आत्मा की तड़फड़ाहट को यह पत्थर सुनाता रहेगा। मुझे और क्या चाहिये? मेरा नाश नहीं होगा। मै अमर हूँ।

अचानक दरवाज़ा खुला। वैवस्वत यम प्रकट हुआ। अमरनाथ का

दिल धड़कने लगा। गला भर आया। अप्रतीक्षित समय में, बेमौके पर यम के आने से अमरनाथ को अपार घृणा और मनोव्यथा हुई।

यम अमरनाथ के कुटुम्ब का जन्म-वैरी था। अमरनाथ के कुटुम्ब में कोई भी अमरता पाये, यह उसे फूटी आँखों न भाता था। सभी के गायब होकर, मिट्टी होकर, नामोनिशान मिटकर विलीन हो जाने में उसे परम तृप्ति होती थी। सिर्फ अपना ही कुटुम्ब अविनाशी, शाश्वत रहे यही उसकी कामना थी। इसलिए जब अमरनाथ अपना काम पूराकर, अपने नाम को नक्षत्रों से लिखने का प्रयत्न कर रहा था, तभी यम आ धमका।

यम को देखकर अमरनाथ को गुस्सा आया। कलाकार आगन्तुक से लड़ना नहीं चाहता था। उसे मालूम था कि यह असंभव है। यम में अधिक बल था। उसकी समता करनेवाला कोई नहीं। लड़ने पर भी फायदा नहीं। वेदनातिरेक में उद्भूत विरक्ति के साथ कलाकार ने मुसकाते हुए, उसका स्वागत किया।

'आ गये ?'—उसने पूछा। शक्ति-हीनता का सारा शोक उस स्वर में ध्वनित हो रहा था। आशा के भग्न-खण्ड का स्वर उसमें था।

'हाँ, आ गया। सोचते थे, नहीं आऊँगा ? मूढ ! तुममें इतना धैर्य ! इतना साहस ! तुम्हारा कुल, परम्परा क्या है ? आर्यवंश ? चन्द्रवंश ? नहीं, मिट्टी का एक ढेला ! सूर्य और चन्द्रमा से प्रतिस्पर्द्धा करने का प्रयत्न हो रहा है ! तुम्हें हत-विहतकर, चूर-चूर कर दूँगा !'—उसका था वह गर्जन, हुंकार। उसकी हँसी में मृत्यु का परिहास सुनाई दिया।

बनने की अभिलाषा उसके रक्त में, आत्मा में प्रविष्ट है। लेकिन यह कैसे सभव है? बच्चा इसका उत्तर दे रहा है। मास के मरने से क्या हुआ। क्या मास ही मनुष्य है? नहीं, नहीं, मनुष्य उससे भिन्न ही कोई चीज है। ये देवता, देव सब कौन हैं? इन्द्र नहीं वरुण नहीं, रुद्र, अग्नि, सोम और सुब्रह्मण्य नहीं; ये सभी देवता अमरत्व पाये हुए शिल्पी हैं। ईश्वर के ऊपर भी एक स्थान है। वहाँ कलाकार का वास है। वह बच्चा अपनी तोतली बोली में, स्थिर मद हास में कह रहा है—रे मनुष्य, निश्चिन्त रहो; आनन्द से रहो। क्या काल ही को हँसी आती है? तुम भी मेरे साथ हँसा करो।—मैंने एक लबा व्याख्यान झाडा।

'मैं क्या जानू, महाशय? ये कला-सबन्धी बाते मेरी खोपडी में घुसती ही नहीं हैं। आप तो पडित ठहरे'—उन्होंने कहा।